भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) की पश्चिम बंगाल राज्य कमेटी का मुखपत्र

स्वाधानता

वर्ष - 81 • अंक -02 9 जनवरी, 2021 कीमत: 2 रुपये • पृष्ठ-एक

सीपीआई (एम) का आह्वान

वाम-धर्मनिरपेक्ष विकल्प सरकार गठित करो

सीपीआई (एम) पश्चिम बंगाल राज्य कमेटी की बैठक ३-४ जनवरी को संपन्न हुई। राज्य कमेटी की तरफ से बैठक के बाद एक बयान जारी किया गया। इस बयान में उल्लेख किया गया कि राज्य विधानसभा के चुनाव में तृणमूल कांग्रेस और भाजपा को परास्त करना है। इन दोनों को परास्त कर विकल्प वाम धर्मनिरपेक्ष सरकार बनाने का आह्वान किया गया है। इस बयान में यह भी उल्लेख किया

गया है कि वर्ग-संघर्ष और जन-आंदोलन को और व्यापकता देनी होगी। जनता के साथ गंभीर संपर्क स्थापित करना होगा। राजनीतिक प्रचार अभियान तेज करना होगा। सांगठनिक कमजोरियों को दुर करते हुए शक्ति अर्जित करनी होगी।

कोलकाता के प्रमोद दाशगुप्त भवन में यह सभा हुई। इसकी अध्यक्षता विमान बसु ने की। पार्टी के महासचिव सीताराम येचुरी इस सभा में उपस्थित थे। पार्टी राज्य कमेटी के सचिव सूर्यकांत मिश्र ने राजनीतिक प्रतिवेदन पेश किया। राजनीतिक परिस्थिति, आंदोलन संग्राम के कार्यक्रम, आगामी विधानसभा चुनाव की प्राथमिक तैयारी जैसे विषयों पर खुल कर

चर्चा हुई। इस राज्य कमेटी की बैठक में जन मोर्चों के स्वतंत्र और

निजी कार्यक्रमों के अतिरिक्त जरूरी मांगों के आधार पर आंदोलन

अम्बरीन अरशद

संगठित करने पर जोर दिया गया। सीताराम येचुरी ने कहा कि अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में कुछ परिवर्तन हुए हैं। अमेरिका के राष्ट्रपति चुनाव में पराजित हुए हैं। ट्रम्प के पराजित होने से दक्षिणपंथी कुछ हद तक कमजोर हुआ है। जनवादी और क्रांतिकारी शक्तियों के सामने

वामपंथियों को जनता की मांग के अनुसार आंदोलन संगठित करना होगा और इसी आंदोलन के जरिये इस ध्रुवीकरण की प्रक्रिया को ध्वस्त करना होगा। अनाज, काम, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे विषयों के संदर्भ में विकल्प नीति लागू करनी होगी। प्रचार को और जोरदार करना होगा।

आंदोलनों को मजबूत करने का मौका आया है। भारत के शासक वर्ग में द्वंद्व दिख रहा है। बड़े बुर्जुआ और किसान समाज के बीच जो द्वंद्व है वह खुल कर सामने आया है। किसान आंदोलन को मजबूत करने के साथ-साथ वर्गीय आंदोलन को तेज करना होगा। बड़े बुर्जुआजी और गैर बुर्जुआजी में द्वंद्व सामने आया है और इस परिस्थिति में विभिन्न

तरह की संभावनें उत्पन्न हुईं। किसान और मजदुर वर्ग के संगठनों में समन्वय बढ़ा है। एकता बढ़ने की संभावना हुई है। जन-संघर्ष और वर्ग-संघर्ष को आगे बढ़ाने की जरूरत है। केंद्र सरकार और राज्यों के बीच द्वंद्व बढ़ा है। जिसके चलते भाजपा विरोधी हवा तैयार हुई है। ऐसी स्थिति में सीपीआई (एम) सहित वामपंथियों को हस्तक्षेप करना होगा। उन्होंने बताया है कि पश्चिम बंगाल में दो राजनीतिक शक्तियों

के बीच ध्रुवीकरण होने लगा है। वामपंथियों को जनता की मांग के अनुसार आंदोलन संगठित करना होगा और इसी आंदोलन के जरिये इस ध्रुवीकरण की प्रक्रिया को ध्वस्त करना होगा। अनाज, काम, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे विषयों के संदर्भ में विकल्प नीति लागू करनी होगी। प्रचार को और जोरदार करना होगा।

सूर्यकांत मिश्र ने कहा कि राज्य की परिस्थितियों में परिवर्तन हो रहा है। मेहनतकशों के लिये वामपंथी संघर्षरत है। इस संघर्ष की सीमाओं को बढ़ाने की जरूरत है। वामपंथी, जनवादी, धर्मनिरपेक्ष शक्तियों को एकजुट करना होगा। इसी एकजुटता की आधार पर विधानसभा के चुनाव होंगे। बुथ स्तर पर सांगठनिक तैयारी

बाकी पेज ८ पर

महासचिव सीताराम येचुरी ने कहा

देश के लिए भयानक संकट भाजपा



गणशक्ति के ५५ साल के मौके पर आयोजित सभा को संबोधित करते हुए सीताराम येचुरी।

संसद और अदालत सहित सभी संवैधानिक संस्थाओं को

खत्म करते हुए फासीवादी हिंदुत्व का शासन कायम करना चाहती है-भाजपा। देश के लिये भाजपा भयानक संकट है। सीपीआई (एम) के महासचिव सीताराम येचुरी ने यह बात ३ जनवरी को गणशक्ति के ५५ साल होने के मौके पर आयोजित सभा को संबोधित करते हुए कही। उन्होंने यह कहा कि सिर्फ बंगाल में ही नहीं बल्कि पूरे देश के समक्ष जो भयानक संकट है, उस संकट को परास्त करने के लिये आगामी विधानसभा चुनाव में भाजपा को हराना होगा। जब तक पश्चिम बंगाल में तृणमूल को नहीं हराया जाता है, तब तक भाजपा को हराना संभव नहीं है। तृणमूल को साथ में लेने से भाजपा को हराना

फतिमा कनीज

कठिन है। इससे उल्टा नतीजा निकलेगा। भाजपा की जीत

का रास्ता साफ हो जायेगा। भाजपा को हराने के लिये तृणमूल को हराना ही पड़ेगा।

सीताराम येचुरी ने बताया कि भाजपा सरकार संसद, अदालत, चुनाव आयोग सहित सभी संवैधानिक संस्थाओं की भूमिका को सीमित कर दिया है। जब तक भाजपा को नहीं हराया जाता है, तब तक देश को बचाना भी मुश्किल है। उन्होंने कहा कि इस राज्य में तृणमूल ने भाजपा को बुला कर लाया है। भाजपा और तृणमूल केंद्र सरकार में भी एकसाथ थी। राज्यवासी यही चाहते हैं कि तृणमूल की हार हो। भाजपा और तृणमूल आगामी चुनाव में बाकी पेज ८ पर

विकल्प नीतियों का प्रचार करें : सूर्यकांत मिश्र

वसी म आलम

सीपीआई (एम) के राज्य सचिव सूर्यकांत मिश्र ने ५ जनवरी को बारासात में आयोजित एक जनसभा को संबोधित करते हुए कहा कि मजदूर-किसानों सहित आम जनता के बीच वैकल्पिक नीति लेकर जाना होगा। उन्होंने बताया कि विगत १० साल से तृणमूल सरकार लूट कर रही है। तृणमूल सरकार का शासन देखकर जनता व्यथित हो गयी है। कुछ तृणमूली चोरी करके दूसरे दल में जा रहे हैं। जनता सब कुछ देख रही है। इस राज्य में अल्पसंख्यक सुरक्षाहीन हो चुके हैं। उनके पास कोई खड़ा होने वाला नहीं है। ज्योति बसु कहते थे कि तृणमूल का सबसे बड़ा अपराध है भाजपा को इस राज्य में बुलाना । तृणमूल सरकार के जमाने में आरएसएस काफी बढ़ गया है। उत्तर बंगाल से दक्षिण बंगाल तक जब वामपंथियों को जुलूस करने का अनुमोदन नहीं दिया जाता, तब आरएसएस को हथियार लेकर जुलूस निकालने और हथियार का प्रशिक्षण देने के लिये शिविर करने का अनुमोदन दिया जाता है। पूरे देश में आरएसएस-भाजपा सबसे बड़ा संकट है। पश्चिम बंगाल में यदि तृणमूल की सरकार रहती है तो भाजपा मुकाबला करना कठिन है। वाममोर्चे के जमाने में आरएसएस-भाजपा सिर नहीं उठा पा रहे थे। तृणमूल और भाजपा विरोधी संघर्ष में कांग्रेस को साथ में लेकर वाम और धर्मनिरपेक्ष शक्तियों को एकजुट करना होगा।

उल्लेखनीय है कि उत्तर २४ परगना जिला कमेटी के आह्वान पर इस दिन रवींद्र भवन में आगामी विधानसभा चुनाव के मौके पर स्थानीय कार्यकर्त्ताओं को लेकर एक जनसभा हुई। इस सभा की अध्यक्षता नेपालदेव भट्टाचार्य ने की। इस सभा में जिला सचिव मृणाल चक्रवर्ती और राज्य सचिव मंडल के सदस्य पलाश दास ने वक्तव्य पेश किया।

सूर्यकांत मिश्र ने कहा कि पूरी दुनिया में दक्षिणपंथ की हवा तेज हुई है। देश में आर्थिक संकट बढ़ा है। इसी संकट से महामारी की घटना घटी है। यदि स्वास्थ्य व्यवस्था का निजीकरण नहीं होता तो महामारी जैसी घटना नहीं घटती और उसका मुकाबला किया जा सकता था। पर्यावरण के संकट के चलते महामारी का संकट पैदा हुआ है। पूरी दुनिया इस संकट से तस्त है। भारत भी इस संकट से ग्रस्त है। लोगों में क्रय शक्ति कम हो गयी है। कारखाने बंद हो रहे हैं। आठ करोड़ लोगों की नौकरी चली गयी। केंद्र सरकार पर जनता का आक्रोश बढ़ रहा है। सूर्यकांत मिश्र ने कहा कि कृषि कानून को वापस करने और बिजली बिल वापस करने के नाम पर दिल्ली में आंदोलन चल रहा है। कारपोरेट के हित में यह कानून लागू हो रहा है। इससे १ लाख ३५ हजार करोड़ रुपये कारपोरेटों को मिलेगा। पांच सौ किसान संगठन एकतित होकर अंदोलन कर रहे हैं। यह आंदोलन सफल होगा।

स्वाधीनता, शनिवार, ९ जनवरी, 2021

सम्पादकीय

संवेदनहीन मोदी सरकार के खिलाफ जोरदार किसान आंदोलन का नया तेवर

संवेदनहीन मोदी सरकार के खिलाफ जोरदार किसान आंदोलन का नया तेवर शुरू हो चुका है, जो मोदी सरकार की हेकड़ी को चकनाचूर कर के दम लेगा। किसान आंदोलन नये तेवर के साथ उफान पर आ गया है, जो मोदी सरकार को सावधान कर रहा है, जो मोदी सरकार को चेतने की हिदायत दे रहा है। दिल्ली की सीमाओं में किसानों का आंदोलन जारी है, तकरीबन ४० दिनों से आंदोलन चल रहा है। इस आंदोलन से यह साबित हो गया कि मोदी सरकार असंवेदनशील सरकार है। इस मोदी सरकार को किसानों से लेना-देना नहीं है। विदेशी कंपनियों के हित में मोदी सरकार पूरी तरह समर्पित है। अमेरिकी प्रशासन के संकेत पर चलने वाली मोदी सरकार चंद्र कारपोरेटों के स्वार्थ में सोचती है और उन्हीं कारपोरेटों के स्वार्थ को ध्यान में रखकर काम करना चाहती है। इस मोदी सरकार की असंवेदनशीलता उसी दिन जमीन पर दिखने लगी। जिस दिन से इस सरकार ने आनन-फानन में कृषि कानून पारित कर लिया। यदि सही रूप से विचार किया जायेगा, तो पता चलेगा कि आजादी के बाद मोदी सरकार पिछली अन्य सभी सरकारों की अपेक्षा सबसे ज्यादा असंवेदनशील है। इस असंवेदनशील सरकार को सबक सीखाने का समय आ गया है। जब इस मोदी सरकार को असंवेदनशील कहा जाता है, तब यह सुनने को मिलता है कि सरकार को सख्त होना चाहिए; आखिर क्यों? सरकार देश और देशवासियों के हित में काम करती है। जनता सरकार बनाती है और जब जनता सरकार बनाती है, तब इस सरकार का एक ही काम रहता है कि देश और देशवासियों के हित में वह काम करे। यदि सरकार देश और देशवासियों के हित में काम नहीं करती है, तो उसे सत्ता में रहने का किसी तरह का अधिकार नहीं है। जब से मोदी सरकार आयी है, तब से इस देश में कहर बरप्पा गया है।

यह मोदी सरकार सत्ता में सात साल से है। विगत सात सालों में इस मोदी सरकार ने देशवासियों के हित में एक भी कार्य नहीं किया है। साम्राज्यवादी शक्तियों खासकर अमेरिकी प्रशासन के कहने पर यह मोदी सरकार काम करती है। अमेरिकी प्रशासन के एजेंट के तौर पर काम करने वाली इस मोदी सरकार ने देश को बर्बाद कर दिया। कभी इस मोदी सरकार ने नोटबंदी की, कभी जीएसटी लागू किया, कभी मजदूरों को परेशान करने के उद्देश्य से श्रम कानून को शिथिल बनाया। कभी इसने सीएए विरोधी आंदोलन को कुचल डाला और अभी कृषि व्यवस्था को सफाचट करने के ख्याल से मोदी सरकार ने तीन कृषि कानून लागू करने का इरादा बना लिया है। इस इरादे को खत्म करने के लिए किसान एकत्रित हुए हैं। मोदी सरकार को यह मालूम होना चाहिए कि भारत के किसान अपने बल पर संघर्ष कर रहे हैं। भारत के किसान देशभक्त हैं। देश के हित में भारत के किसानों की वीरगाथा इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ है। मोदी सरकार को भारत के किसानों की वीरगाथा को पढ़ना चाहिए और उससे शिक्षा लेनी चाहिए। मोदी सरकार को भारत के किसानों का इतिहास मालूम नहीं है, इसलिए किसानों से जमीन छीनने में मोदी सरकार जुट गयी है। भारत की कृषि व्यवस्था को उन्नत बनाने के बदले मोदी सरकार उसे ध्वस्त करना चाहती है और यही कारण है कि आज किसान मैदान में उतर चुके हैं। विगत ४० दिनों से आंदोलनरत किसानों से मोदी सरकार एक बार भी सही ढंग से पेश नहीं आयी है। मोदी सरकार अहंकार में डूब चुकी है; यही कारण है कि यह मोदी सरकार असंवेदनशील बन गयी है। जब तक इसकी असंवेदनशीलता खत्म नहीं होगी, तब तक इसका टिकना मुश्किल है। इस मोदी सरकार को ऐसा रोग लग गया है कि यह सरकार अब टिक नहीं सकती है। सही मायने में देखा जाए तो यही दिखता है कि मोदी सरकार पूरी तरह से अमेरिकी प्रशासन की अंध भक्त बन गयी है और इस देश में भी इस मोदी सरकार ने अपना कुछ अंध चेला बनाने का काम किया है, जिन अंध चेलों को तथ्य-तर्क से कुछ लेना-देना नहीं है; वे अंध भक्त सिर्फ मोदी की जय-जयकार करते हैं। आखिर मोदी सरकार ने विगत ७ सालों में देश के मेहनतकशों खासकर मजदूर-किसान-महिला-युवाओं के लिए एक भी काम किया है। क्या मोदी सरकार सिर्फ दिखावा पर नहीं चलती है। मोदी सरकार झूठ हांकती है। एक भी योजना इस सरकार के जमाने में सही ढंग से नहीं चल रही है और यही कारण है कि ऐसी समस्या उत्पन्न हुई है? मदी सरकार सिर्फ वितंडा खड़ा करती है तािक लुटेरों को लूटने का मौका मिले। मोदी सरकार के जमाने में लुटेरों की जमात तैयार हो गयी है।

लुटेरों को लूटने की खुली छूट दी गयी है। मोदी सरकार के जमाने में लुटेरों के लिए नीतियां बनायी गयी हैं। यह जो कृषि कानून बनाया गया है, उससे भी लुटेरों-भगोड़ों को न भारत की कृषि व्यवस्था से लेना-देना है और किसानों के हित में सही कदम उठाना है। ऐसी स्थिति में चाहिए कि सरकार किसानों के पक्ष में खड़ी हो। यदि सरकार किसान के पक्ष में खड़ी होती है, तो देश की कृषि व्यवस्था मजबूत होगी। देश स्वनिर्भर बन सकता है। कृषि क्षेत्र में हजारों समस्याएं हैं; उन समस्याओं को सुलझाने के लिए सरकार कोई काम नहीं करती है। कृषि क्षेत्र पर जो अनुदान दिया जाता था, उस अनुदान को लगातार बंद कर दिया गया। सरकार सिंचाई की व्यवस्था उचित ढंग से मुहैय्या नहीं करती; उधर निजी स्तर पर सिंचाई की व्यवस्था होती भी है, तो उसे नष्ट कर दिया जाता है; कभी कर बढ़ा दिया जाता है; तो कभी बिजली का दाम बढ़ा दिया जाता है, तो कभी फसलों की कीमत घटा दी जाती है। बेचारे किसान जाएं भी तो कहां जाएं; और इन किसानों को मजबूर बनाने वाली कौन है, यही मोदी सरकार ना; जिसे वोट दिया गया। लोगों के बीच एक उम्मीद थी; झूठ बोलने वाले इस मोदी पर लोगों ने विश्वास किया। विश्वास करने का यही नतीजा होता है। मोदी सरकार ने किसानों को धोखा दिया है। इस धूर्त मोदी सरकार ने किसानों को धोखा दिया है। इस धोखेबाज सरकार को जब तक सत्ता से उतारा नहीं जाता है, तब तक जनता को आराम मिलने वाला नहीं है। इस सरकार ने पूरे समाज को टूट की कगार पर खड़ा कर दिया है। यदि समाज को बचाना है, तो इस सरकार को जवाब देने के लिए सामने आना पड़ेगा। यह मोदी सरकार भीतर ही भीतर किसानों की एकजुटता को तोड़ने में जुट गयी। मोदी सरकार की जो सहयोगी सरकारें विभिन्न राज्यों में कुशासन चला रही हैं, उन राज्य सरकारों ने भी किसानों पर हमले किये हैं। किसान शांतिपूर्ण प्रदर्शन करते हैं तथा अपनी मांग मांगते हैं और मोदी सरकार उन पर लाठी चलाती है। क्या किसानों को मार-मारकर भगाने की योजना बनाने वाली इस मोदी सरकार को समझना होगा कि किसान कभी भी अपना मैदान नहीं छोड़ेंगे। किसान भगोड़े नहीं होते हैं। सत्ता से इस मोदी सरकार को भगाना पड़ेगा; आज नहीं तो कल यदि बहुत देरी हुई तो इस मोदी सरकार को झुकना ही पड़ेगा। उल्लेखनीय है कि किसानों का इतना लंबा आंदोलन आजादी के बाद पहली बार हो रहा है। मोदी सरकार आंदोलनकारियों से मजाक कर रही है। बातचीत करने के लिए यह सरकार बुलाती है और आधी-अधूरी बात कर किसानों को टरका देती है। समय पर समय देती है- यह मोदी सरकार। इसी से पता चलता है कि यह सरकार कितनी कमजोर है। किसानों से मोदी सरकार बातचीत भी नहीं करना चाहती है; आखिर क्यों; इसलिए कि इस मोदी सरकार को देश की कृषि व्यवस्था का महत्त्व नहीं मालूम है; इस मोदी सरकार को देश के किसानों का इतिहास भी पता नहीं है। यदि देश के किसानों का सम्मान करना जानती तो यह मोदी सरकार इस तरह की अभद्रता नहीं करती। मोदी सरकार पूरी तरह से अभद्र सरकार है। यह सरकार गरीबों और मेहनतकशों से बातचीत भी नहीं करना चाहती है। इस सरकार को अभद्र और असंवेदनशील कहना उचित इसलिए है कि इस आंदलन में ५० से अधिक किसानों की जाने चली गयी है। धरना पर बैठे किसानों के बीच से ५० जान चली गयी। क्या और किस उम्मीद से वे आये थे इस आंदोलन में हिस्सा लेने के लिए;

क्या आंदोलन में हिस्सा लेने के चलते उनकी जान नहीं चली गयी, क्या इसके लिए मोदी सरकार जिम्मेदार नहीं है। इस अमानवीय सरकार के विरुद्ध पूरे देश में प्रतिवाद की आगे जलानी होगी और हमारा देश इस दिशा में आगे बढ़ रहा है। पिछले दिनों जिस तरह से पटना में किसानों पर लाठी बरसायी गयी; क्या वह इंसानियत का परिचय है। इस देश में किस तरह के लोगों ने सत्ता पर कब्जा कर लिया है। यही कारण है कि अलख जगाने की जरूरत हो गयी है। जब तक अलख नहीं जगाया जायेगा, तब तक आगे बढ़ना मुश्किल है। मोदी सरकार भारत की कृषि और किसान संस्कृति को नेस्तनाबूद करने पर आमादा हो चुकी है। किसानों से यह मोदी सरकार न फसल छीनना चाहती है बल्कि उनकी जमीन भी हड़पना चाहती है। चंद कारपोरेटों के हित को साधने के लिए मोदी सरकार ने देश का सर्वनाश कर दिया है। इस सर्वनाश से देश को बचाने की खातिर आगे आना होगा। मोदी सरकार की किसान विरोधी नीतियों की होली जलाने का समय आ गया है। देशभर में किसानों का आंदोलन और तेज होगा। किसानों ने आगामी कार्यक्रम की घोषणा की है। जनवरी महीने में किसान आंदोलन का नया आंदोलन शुरू होने जा रहा है। ६ जनवरी से लेकर २० जनवरी तक 'देशभर में जागृति अभियान' चलेगा। इस अभियान के अंतर्गत विभिन्न तरह के आंदोलन होंगे। इस अभियान के तहत यह बताया जायेगा कि किस तरह मोदी सरकार ने किसानों से लगातार झुठ पर झुठ कहा कि सारी समस्याओं का वह हल कर देगी। महिला किसानों की भूमिका इस देश में किस तरह की है, इस पर आलोकपात करने के लिए महिला किसान दिवस १८ जनवरी को मनाया जायेगा। महिलाओं की भूमिका को किस तरह मोदी सरकार दबा देती है, इस सवाल का जवाब भी दिया जायेगा। २३ जनवरी को नेताजी सुभाषचंद्र बसु का जन्म दिन है। इस दिन पूरे देश में सभी राज भवनों के सामने प्रदर्शन किया जायेगा तथा राज्यपालों को ज्ञापन दिया जायेगा । उस ज्ञापन में यह बताया जायेगा कि किस तरह किसानों के साथ यह मोदी सरकार सौतेला व्यवहार करती है। २६ जनवरी को किसानों का परेड दिल्ली में होगा। पूरी दुनिया यह समझेगी कि किस तरह मोदी सरकार किसानों के साथ धोखाधड़ी करती है।

इस मोदी सरकार की साख नहीं है। यह सरकार होते हुए भी संवेदनहीन है। इस सरकार के पास न हृदय है और न मस्तिष्क। साम्राज्यवादी शक्तियों की शह पर चलने वाली इस सरकार के विरुद्ध लगातार आंदोलन करने के अलावा और कोई दूसरा रास्ता नहीं है। इस सिलसिले में यह कहना पड़ रहा है कि एक कोविड-१९ का प्रकोप और ऊपर से मोदी सरकार की असंवेदनशीलता; महामारी के बीच मोदी सरकार की असंवेदनशीलता चरम पर पहुंच गयी है। इसके विरुद्ध किसानों ने जो आंदोलन आरंभ किया है; वह आंदोलन सही और उचित है। यह परिस्थितियों की मांग है। इस मांग को सामने रखते हुए उन सारी संभावनाओं को हुकीकत में बदलना होगा, तभी जाकर किसानों का आंदोलन सफल होगा। किसानों का यह आंदोलन सफल होगा; इसमें कहीं भी किंतु परंतु नहीं दिखता है। सच की जीत होती है और होती रहेगी; इस जीत को एक क्या हजार मोदी सरकार नहीं दबा सकती है। मोदी सरकार ने किसानों को कुचलने के लिए कदम उठा लिया है, लेकिन पैर उठाने से किसकी गर्दन नहीं कुचली जा सकती है। मोदी सरकार ने गैर कानूनी रवैय्या अपना लिया है। यह सरकार जनतंत्र विरोधी है, इसलिए यह सरकार इतना संवेदनहीन है। इसकी असंवेदनशीलता को खत्म करने का उचित समय आ गया है, जो भारत के किसानों के हाथों ही होना है। भारत के किसानों का आंदोलन कभी भी व्यर्थ नहीं होगा। ज्यों-ज्यों आंदोलन बढ़ता जा रहा है, त्यों-त्यों मोदी सरकार की व्यर्थता उजागर होती जा रही है। इस व्यर्थ मोदी सरकार को सत्ता से बाहर करने के लिए कृत संकल्प लेना होगा। यह संकल्प किसान आंदोलन की सफलता की गारंटी है।

महामारी की आड़ में तेज हुआ प्रशासनिक दमन

अपनी सभी कोशिशें महामारी से निपटने में लगाने के वायदे के बावजूद, तमाम देशों में सरकारों ने जनआंदोलनों और असहमति की आवाज पर लॉकडाउन के बहाने अपना दमन तेज़ किया है। 2020 के साल को लंबे-लंबे लॉ्कडाउन की वज़ह से याद रखा जाएगा। इस साल कोरोना वायरस जंगल की आग की तरह फैलता गया। इसके साथ ही वायरस के प्रसार को रोकने के लिए लाखों लोगों को उनके घरों में कैद कर दिया गया। हॉस्पिटल, स्वच्छता संयंत्रों, किराना दुकानों, खेतों, सुविधा केंद्रों और दूसरे 'फ्रंट लाइन' पर तैनात लाखों कर्मी अपने काम की जगह पर रहने को मजबूर हुए।

इस प्रतिकूल स्थिति में महामारी से निपटने के लिए सरकारी और राजनीतिक नेताओं ने राष्ट्रीय एकजुटता की खोखली अपीलें कीं। कुछ सरकारों को बहुत थोड़े सी राहत देने के लिए मजबूर होना पड़ा, इनमें किराये पर तात्कालिक स्थगन, कर्ज अदायगी में राहत और कई बार पहले बर्बाद कर दिए गए राष्ट्रीय स्वास्थ्य ढांचे को बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया जाना शामिल था। लेकिन ज़्यादातर देशों में राष्ट्रीय एकजुटता का यह हनीमून ज़्यादा लंबे वक़्त तक नहीं चला।

कई देशों में, खासकर वे देश जहां असहमति को दबाने, विरोध प्रदर्शन के आपराधिकरण का लंबा इतिहास रहा है, वहां महामारी और लॉकडाउन का इस्तेमाल सरकारों ने समाज पर अपनी पकड़ को मजबूत करने के लिए बहाने के तौर पर किया। इसके लिए ऐतिहासिक "राज्य के दुश्मनों" और वे सभी लोग जो विरोध प्रदर्शनों को सड़कों तक ले जा रहे थे, उनके खिलाफ़ अभूतपूर्व तरीके से उत्पीड़न का कार्यक्रम चलाया गया।

मनचाही और चयनात्मक गिरफ़्तारियों को अंजाम देने के लिए लॉकडाउन ने बिलकुल सही स्थितियां उपलब्ध करवाईं। इस तरह की चयनात्मक आपराधिकरण की कार्रवाई के खिलाफ़ बड़े आंदोलन की संभावना को लॉकडाउन ने कमजोर कर दिया। भारत, थाईलैंड, कोलंबिया, फिलिस्तीन, अमेरिका और दूसरे देशों में हमने बेहतर भविष्य के लिए संघर्ष का माद्दा दिखाने वालों के खिलाफ़ राज्य के उत्पीड़न में तेज बढ़ोत्तरी देखी।

भारत में भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाली केंद्र सरकार ने राजनीतिक विरोधियों और अल्पसंख्यकों पर अपनी अत्याचार भरी कार्रवाईयां जारी रखीं और कोविड-19 से संबंधित लॉकडाउन को अपने जन-विरोधी एजेंडे को आगे बढ़ाने के लिए इस्तेमाल किया। इस साल की शुरुआत में सरकार उन लोगों के साथ खड़ी रही, जो नागरिकता संशोधन कानून का विरोध कर रहे लोगों के खिलाफ़ जहरीला कैंपेन चला रहे थे। इस कैंपेन की अंतिम परिणिति राजधानी दिल्ली में हुई बड़े स्तर की हिंसा के तौर पर हुई। सरकार ने हिंसा और कोविड-19 के प्रसार का इस्तेमाल महीनों से चल रहे प्रदर्शनों को खत्म करने के लिए किया, इतना ही नहीं गृहमंत्री अमित शाह की निगरानी में दिल्ली पुलिस ने नागरिकता संशोधन अधिनियम का विरोध करने वाले कई नेताओं को निशाना बनाया और उनकी गिरफ़्तारी की। उन्हें हिंसा के लिए ज़िम्मेदार बताया गया। इनमें से ज़्यादातर नेताओं पर कुख्यात आंतक रोधी कानून, "गैरकानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम" के तहत मुकदमा दर्ज किया गया। बीजेपी की सरकार वाले उत्तरप्रदेश में भी प्रदर्शनकारियों पर इसी तरह की कार्रवाई की गई।

नताशा नरवाल, देवांगना कलिता, शर्जील इमाम जैसे छाल नेताओं और उमर खालिद, इशरत जहां, खालिद सैफी, सफूरा जरगर और कफ़ील खान समेत अन्य राजनीतिक एक्टिविस्ट को दिल्ली दंगों में उनकी कथित भूमिका के लिए गिरफ़्तार किया गया। इनमें से ज़्यादातर लोग महीनों से जेल में हैं, जबकि उन पर औपचारिक तरीके से अब तक चार्ज भी नहीं लगाए गए हैं।

मोदी सरकार ने लॉकडाउन का इस्तेमाल गौतम नवलखा जैसे मानवाधिकार कार्यकर्ता और पत्रकार, आनंत तेलतुंबड़े जैसे शोधार्थी की गिरफ़्तारी के लिए भी किया। उन्हें अप्रैल में इसी भयावह UAPA कानून के तहत गिरफ़्तार किया गया। यह गिरफ़्तारी भीमा कोरेगांव केस में उनकी कथित भूमिका को लेकर हुई है। सरकार ने इसी केस में अक्टूबर के महीने में 83 साल के मानवाधिकार कार्यकर्ता स्टेन स्वामी को गिरफ़्तार कर लिया। इसी तरह 2018 से जेल में बंद 79 साल के वरवर राव और 90 फ़ीसदी अपंग हो चुके व जेल में बंद जी एन साईबाबा के मामलों ने भी चिंताएं बढ़ाई हैं। इन सभी मामलों में सरकार और कोर्ट ने परिवार वालों की इन लोगों की बड़ी उम्र और कोरोना संक्रमण को लेकर जेल में उनकी संवेदनशीलता से संबंधित चिंताओं को नज़रंदाज किया है।

कुछ दूसरे मामलों में कोर्ट ने पुलिस और सरकार द्वारा पेश किए गए तर्कों को माना है और बेल देने के लिए तय प्रक्रिया और स्थापित मापदंडों को नज़रंदाज किया है। पुलिस और सरकार ने मीडिया, जिसमें पारंपरिक और सोशल मीडिया दोनों ही शामिल हैं, उनके ज़रिए, सरकारी नीतियों का विरोध करने वाले इन एक्टिविस्ट और पत्रकारों को "अर्बन नक्सल" और "देशद्रोही" के तौर पर प्रस्तुत करने वाले कैंपेन को चलाने के लिए किया है।

फिलिस्तीन

2020 में आत्म-निर्णय (सेल्फ डिटर्मिनेशन) के अपने संघर्ष में फिलिस्तीन को नेतन्याहू के नेतृत्व वाले यहूदी शासन से और भी ज़्यादा प्रताड़नाओं का सामना करना पड़ा है। नेतन्याहू के प्रशासन ने अपनी मित्र साम्राज्यवादी शक्तियों से करीबी संबंधों का इस्तेमाल कब्जाए गए वेस्ट बैंक के एक तिहाई हिस्से के औपचारिक विलय की धमकी देने के लिए किया। ट्रंप द्वारा प्रसारित "डील ऑफ द सेंचुरी" के ज़रिए यह कोशिश की गई है। साथ में इज़रायल ने कुछ अरब देशों के साथ "सामान्यीकरण समझौतों" के ज़रिए फिलिस्तीनी लोगों को विस्तृत अरब दुनिया से काटने की कोशिश की है।

इस साल कई मासूम फिलिस्तीनियों का कत्ल किया गया। 32 साल के इयाद हलाक, 27 साल के अहमद इरेकत, 29 साल के मुस्तफा अबू याकूब और 13 साल के अली अयमान अबू आलिया की हत्याओं की अंतरराष्ट्रीय स्तर पर निंदा हुई। यूएन मानवाधिकार कार्यकर्ताओं ने अबू आलिया की हत्या की निंदा की और स्वतंत्र जांच की मांग की। उन्होंने चिंता जताते हुए कहा कि "हाल के सालों में फिलिस्तीनी बच्चों की हत्याओं की जवाबदेही की कमी से हम गंभीर तौर पर चिंतित हैं।" विशेषज्ञों ने आगे बताया अबू आलिया छठवां बच्चा है, जिसकी इज़रायल ने जिंदा हथियारों के ज़रिए 2020 में हत्या की है। उन्होंने बताया कि 1 नवंबर, 2019 से 31 अक्टूबर, 2020 के बीच इज़रायल द्वारा कब्ज़ाए गए फिलिस्तीनी क्षेत्र में 1048 फिलिस्तीनी बच्चों को इज़रायल के सुरक्षाबलों ने घायल कर दिया।

इज़रायल की सत्ता ने कोविड-19 महामारी का

इस्तेमाल फिलिस्तानी एक्टिविस्ट, जिनमें कई छात्र और स्वतंत्रता सेनानी शामिल थे, उन्हें गिरफ़्तार करने और गैरकानूनी तरीके से हिरासत में लेने के लिए किया। जबकि जेलों में महामारी के लेकर पहले ही चिंताएं जताई जा रही थीं। इज़रायल ने कई फिलिस्तीनी घरों को तबाह कर दिया और राज्य की ताकत और कब्ज़ा करने वाली फौज़ का इस्तेमाल करते हुए फिलिस्तीनी ज़मीन को कब्ज़ा करने की कार्रवाई जारी रखी। साथ ही अवैधानिक बसावटें और फौज की चौकियां लगाने के कार्यक्रम को आगे बढ़ाया, इसके लिए वैधानिक स्वामित्व वाले मालिकों को उस ज़मीन से हटाया गया।

कोलंबिया

पूरे लैटिन अमेरिका में कोलंबिया की अति दक्षिणपंथी इवान डुके की सरकार का मानवाधिकार हनन का इतिहास सबसे बदतर देशों में से एक रहा है। लॉकडाउन की आड़ में उनकी सरकार ने सामाजिक आंदोलनों पर अपने हमले तेज कर दिए, यहां तक कि उन आंदोलनों जिनमें सामाजिक नेताओं, मानवाधिकार रक्षकों और 2016 के शांति समझौते पर हस्ताक्षर करने वालों के नरसंहार की अपील की जा रही थी, उनकी तरफ अपनी आंखें बंद कर दीं।

सामाजिक आंदोलनों का दमन और आपराधिकरण भी बेहद तेजी से बढ़ा है। इसके तहत निगरानी से लेकर सरकार के एजेंटों और 'पब्लिक फोर्स' के सदस्यों द्वारा सामाजिक कार्यकर्ताओं का उत्पीड़न किया गया, उन पर साजिश रचने के आरोप लगाते हुए कई कार्यकर्ताओं को जेलों में बंद कर दिया गया। इसका एक हालिया उदाहरण 15 और 16 दिसंबर को देखने को मिला, जब तीन ऐतिहासिक कृषि नेताओं- टियोफिलो एक्यूना, एडेल्सो गैलो और रॉबर्ट डाज़ा को गिरफ़्तार कर लिया गया। एटॉर्नी जनरल द्वारा उन पर एक हथियारबंद गुरिल्ला समूह का हिस्सा होने का आरोप लगाया गया है। तीनों नेताओं के पक्ष में एक लंबा आंदोलन चला, जिसमें बताया गया कि किसान नेता और अपनी ज़मीन और मानवाधिकार के रक्षकों के तौर पर काम करना कोई अपराध नहीं है।

कोलंबिया की राजधानी बोगोटा में सितंबर की शुरुआत में बड़े स्तर के प्रदर्शन हुए। यह प्रदर्शन पुलिस द्वारा जेवियर ऑरडोनेज़ की हत्या के खिलाफ़ हुए थे। इन प्रदर्शनों का भी सुरक्षाबलों ने बेहद क्रूरता के साथ दमन किया। इस हिंसात्मक कार्रवाई में 13 लोगों की मौत हो गई (बोगोटा में 10 और सोशा में 3), वहीं 65 लोग गंभीर तौर पर गोलीबारी में घायल हो गए। कुल मिलाकर 400 लोग घायल हुए, वहीं सैकड़ों लोगों को मनमाने ढंग से हिरासत में ले लिया गया।

थाईलैंड

थाईलैंड में यह साल एक सैनिक द्वारा बड़े स्तर की गोलीबारी में 30 लोगों की हत्या को अंजाम देकर लोकतंत्र और लोकप्रिय इच्छाशक्ति पर हमले के साथ शुरू हुआ। इस हमले में दर्जनों लोग घायल हो गए, वहीं एक संवैधानिक कोर्ट ने सेना के समर्थन वाली प्रयुत चान-ओ-चा की सरकार की इच्छा पर एक मुख्य विपक्षी पार्टी का विघटन कर दिया।

अगले कुछ महीने तक लोकतांत्रिक संस्थानों का दमन होता रहा, यह तब तक चलता रहा, जब तक राजधानी बैंकॉक और दूसरी जगह विरोध प्रदर्शन शुरू नहीं हो गए। इन प्रदर्शनों में छात्र समूहों से लेकर ट्रेड यूनियनों तक, समाज के सभी तबकों के लोगों ने हिस्सा लिया। सरकार ने अचानक आपातकाल की घोषणा कर दी, कई प्रदर्शनकारियों पर "राजशाही के अपमान" संबंधी मुक़दमे दायर कर दिए गए, यहां तक कि प्रदर्शनों की रिपोटिंग कर रहे मीडिया संस्थानों पर भी मुक़दमे दायर कर दिए गए। लेकिन इसके बावजूद भी आंदोलन जारी रहा और आने वाले साल भी यह मजबूत होता रहेगा।

फिलिपींस

फिलिपींस में राष्ट्रपति रोड्रिगो दुतेर्ते के शासनकाल में दमन जारी रहा। साल 2020 की शुरुआत सरकार और कम्युनिस्ट विद्रोहियों की बीच शांति स्थापना के साथ हुई थी, लेकिन जैसे-जैसे साल बढ़ता गया, यह धीरे-धीरे भंग होती गई। मीडिया पर हुए हमले खासतौर पर उल्लेखनीय हैं, रैपलर में काम करने वाले मशहूर पत्रकार मारिया रेसा और उनके एक साथी को सजा सुनाई गई, राष्ट्रीय प्रसारणकर्ता ABS-CBN बंद हो गया और एक क्षेत्रीय रेडियो पत्रकार विरजिलियो मैग्नेस की हत्या कर दी गई। फिलिपींस के लोगों को कोरोना महामारी के दौर में भी बेहद दमनकारी सरकार को झेलना पड़ा, जिसने नए आतंक-रोधी कानूनों को लागू किया। नागरिक समाज समूहों ने अपने कार्यकर्ताओं की जान को ख़तरा बताते हुए रक्षा की गुहार लगाईं थीं, इसके बावजूद भी इस साल राजनीतिक हत्याएं जारी रहीं। लेकिन सामाजिक कार्यकर्ताओं और मैदानी नेताओं की कोशिशों ने रास्ता भी निकाला, हाल में अतंरराष्ट्रीय अपराध न्यायालय के मुख्य अभियोजक की एक हालिया रिपोर्ट में सरकार को उसके नशा-रोधी अभियान के दौरान मानवता के खिलाफ़ अपराधों का दोषी बताया गया।

पोर्लेंड

पोलैंड में कंजर्वेटिव लॉ एंड जस्टिस (PiS) पार्टी के नेतृत्व वाली सरकार ने 2020 में अपनी प्रतिगामी, महिला-विरोधी नीतियों और कम्यूनिस्टों का दमन बिना थके जारी रखा। पूर्व शक्ति हासिल करने की कोशिश के तहत PiS सरकार ने कोरोना महामारी के बीच मई में राष्ट्रपति चुनावों का ऐलान कर दिया। लेकिन लोगों के बीच बड़े स्तर की नाराज़गी से सरकार को चुनावों को आगे बढ़ाने के लिए मजबूर होना पड़ा और जब 12 जुलाई को चुनाव हुए, तो PiS समर्थित एंड्रजेज़ अपने विपक्षी उदारवादी प्रतिद्वंदी से सिर्फ़ दो फ़ीसदी मतों से जीतने में कामयाब रहे।

PiS सरकार के "महिलाओं के खिलाफ़ हिंसा और घरेलू हिंसा की यूरोपीय संधि", जिसे लोकप्रिय तौर पर इस्तांबुल कंवेशन के नाम से जाना जाता है, उससे बाहर आने के फ़ैसले के खिलाफ़ महिला समूहों, लेफ़्ट और अंतरराष्ट्रीय समुदाय ने बड़े स्तर पर प्रदर्शन किए। अक्टूबर में पोलैंड के संवैधानिक कोर्ट ने भ्रूण गड़बड़ी की स्थिति में गर्भपात को अंसवैधानिक करार दे दिया। पोलैंड के लेफ़्ट संगठनों, महिला समूहों और दुसरे प्रगतिशील वर्ग ने इस फ़ैसले की निंदा की और इसे महिलाओं के खिलाफ़ जंग बताया और पूरे देश में प्रदर्शन शुरू कर दिए। पूरे साल पोलैंड में महिला समूह और प्रगतिशील PiS सरकार की निरंकुशता के खिलाफ़ बिना थके संघर्ष करते रहे, उन्होंने बहादुरी से पुलिसिया कार्रवाई और अति दक्षिणपंथी असामाजिक तत्वों के उत्पीड़न का सामना किया।

अमेरिका

अमेरिका में 2020 इतिहास के सबसे बड़े प्रदर्शनों में से एक विरोध प्रदर्शन का गवाह बना। मिनेपोलिस में 25 मई को जॉर्ज फ्लॉयड की बाकी पेज ६ पर

मोदी सरकार देश की बड़ी आबादी को भूख की कगार पर पहंचाना चाहती

सरकारी मंडिया खत्म होंगी तो भारत की बहुत बड़ी आबादी भूख की कगार पर पहुंच जाएगी। इसलिए अमेरिका से निकले तर्कों की बजाए भारत की जमीनी हकीकत ध्यान देने की जरूरत है। राशन की दकानों पर ₹3,₹2 और एक रुपए में राशन खरीद कर जिंदगी काटते बहुतेरे लोगों को आपने जरूर देखा होगा। इतने सस्ते में अनाज मिलने की वजह से इनके दो जुन के खाने का जुगाड़ हो पाता है। इसके पीछे बड़ी वजह है - साल 2013 में बना राष्टीय खाद्य सुरक्षा कानून। जहां पर सरकार की जिम्मेदारी बनती है कि वह सबसे गरीब लोगों तक सस्ता अनाज पहुंचाएं। उन्हें भूख से मरने के लिए ना छोड़ दे।

इसलिए जब तीन नए कृषि कानूनों की वजह से सरकारी मंडियां ढहती चली जाएंगी तो आने वाले दिनों में सबसे बड़ा झटका राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा नीति के तहत गरीबों को मिलने वाले जीवन पर पड़ने वाला है। देश में जरूरत से कम सरकारी मंडियां होने के बावजूद भी सरकारी मंडियों की वजह से सरकार किसानों से अनाज खरीदती है। और इस अनाज का बहत बड़ा हिस्सा पब्लिक डिसटीब्यूशन सिस्टम के जरिए गरीब लोगों तक पहुंचाया जाता है।

अंग्रेजी की फ्रंटलाइन पत्रिका में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र के प्रोफेसर विश्वजीत धर लिखते हैं कि न्यूनतम समर्थन मूल्य के जरिए सरकारी खरीद की वजह से तीन फायदे होते हैं - पहला, किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य मिलने की वजह से अपनी उपज की ठीक-ठाक कीमत मिल जाती है। दुसरा, अगर कृषि बाजार में बहुत अधिक उतार आए यानी कृषि उपज की कीमत कम हो जाए तो सरकारी मंडियों में एमएसपी मिलने की वजह से बाजार के उतार से किसानों को बचा लिया जाता है और तीसरा की पब्लिक डिसटीब्यूशन सिस्टम के जरिए गरीब लोगों तक सस्ता अनाज पहुंचा दिया जाता है. इस लिहाज इसमें बहुत अधिक दिमाग लगाने की जरूरत नहीं है कि अगर न्युनतम समर्थन मुल्य के जरिए सरकारी खरीद और सरकारी मंडियां खत्म हो जाए तो पब्लिक डिस्ट्रीब्यूशन सिस्टम का ढांचा अपने आप ढह जाएगा।

कहने का मतलब यह है कि इन तीन नए कृषि कानूनों की वजह से भारत के खाद्य सुरक्षा पर बहुत गंभीर असर पड़ते दिख रहा है। अगर यह कानून वापस नहीं लिए गए तो भारत की बहुत बड़ी आबादी भूख का शिकार बन जाएगी।

कुछ तर्कों के सहारे जैसे ही यह निष्कर्ष दिया जाता है वैसे ही इन तीन नए कानूनों के समर्थकों के जरिए यह सवाल उठता है कि फुड कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया यानी भारत खाद्य निगम के गोदामों में बहुत अधिक अनाज पड़ा हुआ है। इसलिए अब कोई भूख से नहीं मरने

बहुत अधिक अनाज के भंडार से जुड़े ऐसे सभी सवालों का जवाब वरिष्ठ अर्थशास्त्री प्रभात पटनायक ने न्यज़ क्लिक के एक आर्टिकल में बड़ी बारीक तौर पर दिया है। प्रभात पटनायक लिखते हैं कि इस बात से इंकार नहीं है कि इस समय भारतीय खाद्य निगम (FCI) के पास बडे पैमाने पर खाद्यान्न भंडार हैं और यह पिछले कई सालों से भारतीय अर्थव्यवस्था की एक नियमित विशेषता बन गयी है। लेकिन इससे यह निष्कर्ष निकाल लेना कि भारत अपनी ज़रूरतों के लिए पर्याप्त खाद्यान्न से कहीं ज़्यादा उत्पादन करता है, अव्वल दर्जे की नासमझी होगी।

जो देश साल 2020 में 107 देशों के लिए तैयार किये गये विश्व भूख सूचकांक (world hunger index) के 94 वें पायदान पर है, अगर इसके पास अनाज का बहुत बड़ा स्टॉक है, तब भी उसे खाद्यान्न में आत्मनिर्भर नहीं कहा जा सकता है। यह कोई मनमाने तरीक़े से निकाला गया निष्कर्ष नहीं है। जब भी लोगों की सामानों और सेवाओं को खरीदने की हैसियत में बढ़ोतरी होती है यानी लोगों की परचेसिंग पावर कैपिसिटी बढती है तभी जाकर किसी तरह की स्टॉक में कमी आती है। अगर एफसीआई के गोदामों में अनाज का स्टॉक हर साल बढ़ रहा है लेकिन लोगों और बच्चों तक सही पोषण नहीं पहुंच रहा है तो इसका मतलब यह है कि लोगों की परचेसिंग पावर कैपेसिटी बहुत कम है। वह अपने लिए इतना भी नहीं कर पा रहे कि अपनी भूख को ठीक ढंग से मिटा सकें। इसलिए जरूरत एफसीआई के गोदामों में अनाज कम करने की नहीं बल्कि लोगों के हाथ तक रोजगार पहुंचाने और उनकी परचेसिंग पावर कैपेसिटी बढ़ाने की है।

लेकिन अधिक अनाज उत्पादन से जुड़ा मामला केवल इतना ही नहीं है। आजकल बहुत सारे विशेषज्ञों की अखबारों में यह राय भी छप रही है कि भारत में कुछ फसलों जैसे गेहूं, धान का उत्पादन बहुत अधिक होता है लेकिन दुसरे फसलों का बहुत कम। इन कृषि कानूनों से फसलों के उत्पादन में डायवर्सिफिकेशन यानी विविधता आएगी। अब इस तर्क पद्धति में दो बातें छिपी हुई है। पहला यह कि यह तर्क बनता कहां से है? और दुसरा यह कि यह तर्क बना क्यों हैं?

पहला सवाल कि ऐसा तर्क बनता कहां से है? इसका बहुत ही माकुल जवाब अर्थशास्त्री प्रभात पटनायक देते हैं कि भारतीय बुद्धिजीवियों में साम्राज्यवादी पुंजीवाद के उन स्वयंसेवी तर्कों को गटक लेने की एक अविश्वसनीय प्रवृत्ति रही है,जिन तर्कों के आधार पर आमतौर पर उनका 'आर्थिक पांडित्य' बना होता है। यह पांडित्य किसी और क्षेत्र के मुक़ाबले भारत की खाद्य अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में कहीं ज़्यादा नज़र आता है।

यानी यह तर्क कि भारत को गेहूं, धान जैसी फसलो की पैदावार छोड़कर दुसरे फसलों की तरफ ध्यान देना चाहिए, जैसे तर्क साम्राज्यवादी पूंजीवाद के मंसूबों से जुड़ते हैं। ऐसे तर्कों का मकसद दनिया के दसरे मुल्कों को विकसित देशों के फायदे के अनुकूल माहौल बनाने से जुड़ा होता है और यह तर्क यहीं से आते हैं।

अब बात करते हैं कि ऐसा तर्क क्यों दिया जा रहा है? तो सबसे जरूरी बात यह है कि ऐसे तर्क केवल अभी नहीं दिए जा रहे हैं। बल्कि यह तर्क पिछले तीन दशकों हिस्सा बने हुए हैं।

अमेरिका कनाडा और यूरोपियन यूनियन में उष्णकिटबंधीय और उपोष्ण किटबंधीय

जलवायु में होने वाली खाद्यान्नों की बड़ी मांग है। वजह यह है कि उत्तर के

औद्योगिक देशों में जलवायु के कारण मुश्किल से एक मौसमी खेती होती है और

डेयरी उत्पादों का उत्पादन होता है। तकरीबन दो-तीन दशकों से इनकी चाह रही

है कि भारत जैसा देश अपनी अनाजों की सरकारी खरीद बंद कर दें। इनके यहां

अधिशेष पड़ा हुआ अनाज भारत जैसे देश में बिके। और भारत में वैसे खाद्यान्नों का

उत्पादन हो जिनकी मांग औद्योगिक देशों में बहुत अधिक है। एक तरह से समझ

लीजिए तो यह कोशिश भारत की अर्थव्यवस्था को फिर से उपनिवेश की तरह

इस्तेमाल करने जैसी है। इसी तर्ज पर डब्ल्यूटीओ की नीतियां भी बनती हैं।

दुनिया की जमीन पर भारत ऐसे जगह पर स्थित है, जहां की जलवायु की वजह से भारत में कई तरह के फसल होने की संभावना बनी रहती है। इसलिए भारत तीन मौसमों में खरीफ, रबी और जायद की फसलें भी होती हैं। लेकिन यह सहूलियत उत्तर के औद्योगिक ठंडे देशों को नहीं। या यह कह लीजिए कि दुनिया के उत्तर में बसे तथाकथित विकसित देश जैसे अमेरिका, कनाडा, यूरोपीय संघ से जुड़े देश भारत जैसे उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में होने वाली फसलों को नहीं उगा पाते ।

अर्थशास्त्री उत्सा पटनायक द हिंदु अखबार में लिखती है कि दुनिया के उत्तर में बसे औद्योगिक देश जैसे अमेरिका कनाडा और यूरोपियन युनियन में उष्णकटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु में होने वाली खाद्यान्नों की बड़ी मांग है। वजह यह है कि उत्तर के औद्योगिक देशों में जलवायु के कारण मुश्किल से एक मौसमी खेती होती है और डेयरी उत्पादों का उत्पादन होता है। तकरीबन दो-तीन दशकों से इनकी चाह रही है कि भारत जैसा देश अपनी अनाजों की सरकारी खरीद बंद कर दें। इनके यहां अधिशेष पड़ा हुआ अनाज भारत जैसे देश में बिके। और भारत में वैसे खाद्यान्नों का उत्पादन हो जिनकी मांग औद्योगिक देशों में बहुत अधिक है। एक तरह से समझ लीजिए तो यह कोशिश भारत की अर्थव्यवस्था को फिर से उपनिवेश की तरह इस्तेमाल करने जैसी है। इसी तर्ज पर डब्ल्यूटीओ की नीतियां भी बनती हैं।

1990 के दशक के दौरान फिलीपींस बोत्सवान जैसे दर्जनों देश अपनी खाद्यान्न नीति अमेरिका के अनुसार ढालने की वजह से पूरी

से कृषि से जुड़े संपादकीय पन्नों का तरह से अमेरिकी अनाजों पर निर्भर हो गए। और एक वक्त ऐसा आया कि दुनिया की तकरीबन 37 देशों में खाद्यान्न को लेकर साल 2007 के दौरान खूब दंगे हुए। इन देशों के शहर गरीबी के केंद्र बन गए।

> इन तर्कों से साफ है कि भारत जैसे विकासशील देश में सरकार के जरिए खाद्यान्न प्रबंधन की जरूरत है। इसे पूरी तरह से बाजार के रहमों करम पर छोड़ देना कहीं से भी उचित नहीं है। पंजाब और हरियाणा में जिस तरह से दुसरे देशों की कुछ कंपनियों ने किसानों से कॉन्ट्रैक्ट खेती की, कई रिसर्च पेपरों में इस खेती से भी निष्कर्ष निकला है कि यहां किसानों का शोषण ही हुआ है। कंपनियों ने कॉन्ट्रैक्ट के आधार पर फसल की क्वालिटी ना होने पर किसानों को सही कीमत नहीं दिए। यानी बाजार हर तरह से अभी तक असफल रहा है।

> भारत जैसे देश में जहां एक किसान को साल भर में सरकार की तरफ से महज ₹20 हजार रुपए की सरकारी मदद मिलती है और अमेरिका जैसे देश में जहां एक किसान को साल भर में सरकार की तरफ से तकरीबन 45 लाख रुपए की सरकारी मदद मिलती है। इन दोनों के बीच इतना अधिक अंतर है कि भारत में कृषि बाजार को पूरी तरह से बाजार के हवाले कर देने का मतलब कृषि बाजार को बर्बाद करने जैसा होगा।

इसके साथ भारत में तकरीबन 86 प्रतिशत आबादी की अब भी मासिक आमदनी ₹10 हजार से कम की है। इसे अपना पेट भरने के लिए सरकार की राशन की दुकान की बहुत जरूरत है। राशन की दुकानों में राशन रहे इसके लिए जरूरी है कि सरकार विकसित देशों द्वारा फैलाए जा रहे भ्रम की बजाए भारत की हकीकत को ज्यादा तवज्जो दें।

मोदी सरकार का बेरोजगारपरक खेंखा

सरकार ने वास्तव में

महामारी का इस्तेमाल

करके एक खतरनाक दवा

का इस्तेमाल करने की

कोशिश की, जिसमें तीन

कृषि-कानूनों और चार

श्रम संहिताओं को लागू

किया, जो एक साथ भयंकर

बेरोजगारी पैदा करने के

साथ आय को कम करेंगे

और लोगों को अधिक

असुरक्षा प्रदान करेंगे।

वर्ष समाप्त होते-होते देश में बेरोज़गारी की दर 9 प्रतिशत से अधिक हो गई है और तथाकथित आर्थिक सुधार मृगतृष्णा बन कर रह गए हैं।

भारत के आम जनमानस के लिए, इतिहास में वर्ष 2020 को आजीविका कमाने और आय के मामले में सबसे खराब वर्ष के रूप दर्ज़ किया जाएगा। बेरोजगारी का स्तर काफी भयंकर स्तर पर पहुँच गया है, आय में कमी और अभाव इस हद पहुँच गया था कि हजारों परिवार भुखमरी के

कगार पर पहुंच गए थे। दुख की बात है कि इसका नतीजा केवल महामारी नहीं थी। अचानक लॉकडाउन, आम जनता को आय सहायता प्रदान करने में विफलता, सरकार की सार्वजनिक खर्च पर लगाम लगाने की जिद और कॉपोरेट घरानों की डूबती अर्थव्यवस्था को संकट से उबारने की वजह से था। लेकिन, सबसे निराशाजनक पहलू यह है कि बुरे दिन अभी भी खत्म नहीं हुए हैं।

सरकारी प्रचार के बुलबुले के असर में रहने वालों के लिए, भारत की विनाशकारी अर्थव्यवस्था "वी-आकार की रिकवरी" से गुजरने

वाली है। वे हर जगह "हरी टहनी" के लहराने यानि अर्थव्यवस्था की रिकवरी के सुखद एहसास की ढपली बजाते नज़र आ रहे हैं। कॉर्पोरेट धनाडय तबके के संकट को संबोधित करते हुए, प्रधानमंत्री मोदी प्रसन्न दिखाई दिए कि जैसे अर्थव्यवस्था अपेक्षा से अधिक तेजी से ठीक हो रही थी। इसके लिए बेहतर जीएसटी संग्रह, माल ढुलाई और बंदरगाह यातायात में वृद्धि, और सबसे मोहक- रिकॉर्ड ऊंचाई तक पहुंचने वाले शेयर बाजार की गाथा को पानी पी-पी कर सुनाया जा रहा हैं।

जबिक वास्तविक दुनिया में, चीजें इसके काफी उलट हैं। किसी भी आर्थिक संकट के हल की सबसे बड़ी शर्त या महत्वपूर्ण उपाय है रोजगार होता है। कितने लोग काम पर हैं? बेरोजगारी दर कितनी है? और, आबादी का कौन सा हिस्सा काम कर रहा है? इन सब बातों पर ध्यान न देने से हालात चिंताजनक नज़र आते हैं।

नीचे दिए चार्ट में सीएमआईई डेटा के आधार पर दिसंबर 2018 से शुरू होने वाले पिछले दो वर्षों की मासिक बेरोजगारी दर को दर्शाता है। मार्च 2020 तक यानि लॉकडाउन तक, बेरोजगारी की दर 7-8 प्रतिशत के इर्द-गिर्द मंडरा रही थी, जो एक तरह से बहुत खुशहाल स्थिति नहीं थी। फिर लॉकडाउन का विनाशकारी झटका आया जिसने देश की विशाल अर्थव्यवस्था को प्रभावी रूप से बंद कर दिया। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इससे बेरोजगारी की दर बढ़ गई-जोंकि अप्रैल माह में लगभग 24 प्रतिशत हो गई थी और इस वर्ष मई में आते-आते लगभग 22 प्रतिशत रह गई थी। जैस-जैसे आर्थिक गतिविधि धीरे-धीरे शुरू हुई, लोग अपने अस्थाई काम पर वापस चले गए और उन्हे जो भी कमाई की दर मिली उस पर काम करने लगे थे। इससे बेरोजगारी की दर में गिरावट आई, हालांकि इसने अर्थव्यवस्था को बहुत बेहतर नहीं किया क्योंकि आय अभी भी पहले की तुलना में बहुत कम थी।

खरीफ की कटाई समाप्त होते ही और रबी की बुवाई की तैयारी से पहले अक्टूबर में एक छोटी सी उठापटक हुई और नवंबर में बेरोजगारी की दर में 6.5 प्रतिशत तक गिरावट आ गई थी। इसने सरकार समर्थक अर्थशास्त्रियों और टीवी शो विशेषज्ञों के बीच बहुत उत्साह पैदा किया, जिन्होंने लगे हाथ इस बात की घोषणा कर दी कि अब सबसे बुरा वक़्त बीत गया। लेकिन, दिसंबर से सीएमआईई के सबसे नए और साप्ताहिक आंकड़ों से पता चलता है कि 27 दिसंबर तक बेरोजगारी की दर 9

प्रतिशत से भी अधिक थी। वास्तव में, ऐसा लगता है कि लॉकडाउन के बाद की अवधि में बेरोजगारी 8-9 प्रतिशत के नए 'सामान्य' स्तर पर ठहर गई थी। यह तथ्य 'रिकवरी' के बारे में सत्तारूढ़ समर्थकों की सभी हसरतों की धज्जी उड़ा देता है।

अब, इस संकट के दूसरे पहलू को देखें जो दूर जाने से इनकार कर रहा है- जो वास्तव में काम कर रहे हैं। आपके जहन जो सबसे पहली बात आएगी कि- दिसंबर 2018

> में कम करने वाले व्यक्तियों की संख्या लगभग 39.7 करोड़ थी, और यह संख्या नवंबर 2020 में 39.4 करोड़ थी। इस पर लॉकडाउन का प्रभाव स्पष्ट रूप देखा जा सकता है क्योंकि अप्रैल में यह संख्या 31.4 करोड़ रोजगार से मई में केवल 28.2 करोड़ तक रह गई थी। लेकिन इसके बाद यह उसी स्थान पर वापस आ गई थी।

> इसका मतलब क्या है? यानि हर दिन जनसंख्या बढ़ रही है, और अनुमान है कि हर साल लगभग 12 करोड़ लोग कामकाजी उम्र की आबादी में प्रवेश कर जाते हैं। ये सभी नौकरियों की तलाश में नहीं रहते हैं।

कुछ अभी भी पढ़ रहे हैं, महिलाओं को आमतौर पर जल्दी शादी करने के लिए कहा जाता है आदि। औसत काम में सहभागिता की दर-आबादी का वह हिस्सा जो काम करने को तैयार है- लॉकडाउन से पहले लगभग 42 प्रतिशत हुआ करता था। इसका मतलब है कि हर साल लगभग पांच करोड़ लोग नौकरी तलाशने वालों की सेना में शामिल हो जाते हैं। फिर भी, दो वर्षों में, काम करने वाले व्यक्तियों की संख्या समान रहती है। इससे यह बात स्पष्ट होता है कि लोग या तो बेरोजगारों की विशाल सेना में शामिल हो रहे हैं, या पराजित और हतोत्साहित हैं, वे घर बैठे हैं, कुछ समय में एक बार नौकरी करते हैं, कुछ खेती में या अन्य लोग ऐसे परिवार के काम में मदद करते हैं।

देश के महामारी की चपेट में आने से पहले ही भारत की अर्थव्यवस्था नाजुक तो थी लेकिन संकट की चपेट में भी थी। आर्थिक विकास धीमा हो गया था, बेरोजगारी बढ़ रही थी, उपभोग पर खर्च गिर रहा था। इसका असर बढ़ते कुपोषण की चौंकाने वाली सीमा में भी परिलक्षित होता है जैसा कि हाल ही में राष्ट्रीय परिवार एवं स्वास्थ्य सर्वेक्षण 2018-19 के सर्वेक्षण में सामने आया है। मोदी सरकार ने खुद को इस संकट से निपटने में पूरी तरह से असमर्थ पाया, क्योंकि उन्होने अधिकांश कार्यों को निजी क्षेत्र पर छोड़ दिया, जिनसे अर्थव्यवस्था को चलाने की बड़ी धारणा थी, और सबसे अच्छी उम्मीद भी थी।

लेकिन इस साल आई महामारी, और इसके प्रति सरकार की गलत प्रतिक्रिया और मुक्त बाजार के देवताओं के प्रति निरंतर आज्ञाकारिता ने यह सुनिश्चित कर दिया कि लोगों को एक सुरंग के भीतर धकेल दिया गया है और जिसका कोई अंत नज़र नहीं आता है।

सरकार ने वास्तव में महामारी का इस्तेमाल करके एक खतरनाक दवा का इस्तेमाल करने की कोशिश की, जिसमें तीन कृषि-कानूनों और चार श्रम संहिताओं को लागू किया, जो एक साथ भयंकर बेरोजगारी पैदा करने के साथ आय को कम करेंगे और लोगों को अधिक असुरक्षा प्रदान करेंगे।

दूसरे शब्दों में कहे तो, आज जो विकट स्थिति देखी जा रही है- बढ़ती बेरोजगारी, बढ़ती कीमतें, गिरती आय- यह इस सब के और अधिक बढ़ाने का इशारा है। यह तर्क से परे की बात है कि नीतियों में आमूलचूल परिवर्तन की सख्त जरूरत है- या फिर इसके लिए इस सरकार को बदलना होगा।

बिहार के गांव कुपोषण और बदहाली के शिकार

सिर्फ़ मान्यता बदल देने से गांव शहर नहीं हो जाते। राज्य में कई जगह इस फैसले का विरोध हो रहा है। लोग कह रहे हैं कि उन्हें कोई सुविधा तो मिलेगी नहीं, इसके उलट ग्रामीण क्षेत्र के लिए संचालित होने वाली कई योजनाओं से हाथ धोना पड़ेगा। 2020 के आखिरी दिनों में बिहार सरकार ने सैकड़ों गांवों को शहर का रुतबा दे दिया और अचानक राज्य में 125 नये शहर हो गये। लेकिन इस घोषणा से वे लोग बिल्कुल खुश नजर नहीं आ रहे जो पहले ग्रामीण क्षेत्र के वासी थे, अब शहरी हो गये हैं। वे कह रहे हैं, सिर्फ मान्यता बदल देने से गांव शहर नहीं हो जाते। राज्य में कई जगह इस फैसले का विरोध हो रहा है। लोग कह रहे हैं कि उनके इलाके की 60 से 90 फीसदी तक आबादी अभी भी खेती पर निर्भर है, जो शहरी वर्गीकरण के नियमों के खिलाफ है। गांव से शहर बन जाने पर उन्हें कोई सुविधा तो मिलेगी नहीं, इसके उलट ग्रामीण क्षेत्र के लिए संचालित होने वाली कई योजनाओं से हाथ धोना पड़ेगा। जानकार बताते हैं कि यह फैसला सिर्फ इस मकसद से लिया गया है, तािक राज्य की शहरी आबादी का आकार बढ़ाया जा सके।

26 दिसंबर, 2020 की बिहार सरकार की कैबिनेट की बैठक में पहले 103 नगर पंचायत और आठ नये नगर परिषद की घोषणा की गयी। बाद में 14 अन्य नगर पंचायतों की घोषणा की गयी। ये सभी इलाके पहले ग्राम पंचायत थे। कई ग्राम पंचायतों को जोड़ कर नगर पंचायत और नगर परिषद बनाये गये हैं। जिससे एक झटके में राज्य के सैकड़ों गांव शहर बन गये। इस फैसले को बिहार सरकार शहरीकरण को बढ़ावा देने वाला फैसला बता रही है। आंकड़े भी इस बात की तस्दीक कर रहे हैं कि इस फैसले से पहले जहां राज्य की सिर्फ 11.27 फीसदी आबादी शहरों में रहती थी, जो देश में सबसे कम थी। अब यह आबादी बढ़कर तकरीबन 20 फीसदी हो जायेगी। हालांकि अभी भी यह देश के औसत से काफी पीछे है। देश में इस वक्त 31.16 फीसदी आबादी शहरों में रहती है।

राज्य सरकार जहां इस फैसले पर अपनी ही पीठ थपथपा रही है और कह रही है कि गांव से शहर बनने पर इन इलाकों का तेजी से विकास होगा। मगर लोग अमूमन इस फैसले से खुश नहीं हैं। उन्हें ग्रामीण से शहरी बन जाने पर कोई खुशी नहीं हैं, बिल्क वे नाराज ही हैं और जगह-जगह इस फैसले का विरोध हो रहा है। राजधानी पटना से सटे बिहटा इलाके में जहां पिछले कुछ वर्षों में शहरीकरण शुरू हुआ है, उसे ग्राम पंचायत से सीधे नगर परिषद बना दिया गया है। उसके साथ आसपास के कई ग्राम पंचायतों को भी जोड़ दिया गया है, जहां अभी भी लोग खेतिहर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वहां के मुखिया और अन्य जनप्रतिनिधियों ने बैठक कर इस फैसले का विरोध किया है। ऐसा ही विरोध मोतिहारी में रतनपुर, सिंधिया और अजगरी के लोग कर रहे हैं। ग्रामीणों ने टायर जला कर इस फैसले का विरोध किया है। वे कह रहे हैं कि उनके गांव की 90 फीसदी आबादी खेती पर निर्भर है। मधुबनी के बेनीपट्टी में भी जनप्रतिनिधियों ने बैठक कर इस फैसले का विरोध किया। दरभंगा के बिरौल में भी विरोध हो रहा है। शेखपुरा में भी छह पंचायत के लोग इस फैसले का विरोध कर रहे हैं, जिन्हें दो अलग-अलग नगर परिषदों में शामिल किया गया है।

ये तो उन विरोधों की सूची है, जहां गांव के लोग प्रदर्शन कर रहे हैं। इसके अलावा अमूमन हर जगह लोग इस फैसले से नाराजगी जता रहे हैं। लोगों की यह प्रतिक्रिया बता रही है कि उन्हें इस बात पर बिल्कुल भरोसा नहीं है कि गांव से शहर बन जाने के बाद उनके इलाके का विकास हो जायेगा, उन्हें लगता है कि इससे सिर्फ उन पर करों का बोझ बढ़ेगा और उन्हें मनरेगा जैसी कई कल्याणकारी योजनाओं से हाथ धोना पड़ेगा। लोगों की इस नाराजगी की वजह को समझने के लिए हमने जब पटना स्थित टाटा इंस्टीच्यूट ऑफ सोशल साइंसेज के प्राध्यापक पुष्पेंद्र जी से बात की तो उन्होंने कहा कि अमूमन शहरी क्षेत्र की परिभाषा यह मानी जाती है कि वहां पांच हजार से अधिक की आबादी हो, आबादी का घनत्व 400 व्यक्ति प्रति किमी हो और वहां की 75 फीसदी से अधिक आबादी गैर कृषि कार्यों से आजीविका हासिल करती हो। हालांकि यह परिभाषा काफी पुरानी है और इसमें बदलाव की जरूरत है। क्योंकि अब तो पांच हजार की आबादी लगभग हर ग्राम पंचायत की हो गयी है। और बिहार में आबादी का घनत्व इतना है कि कई जगह 400 व्यक्ति प्रति किमी के हिसाब से लोग बसे दिख जायेंगे। इसके बावजूद जब हम इन मानकों को भी देखते हैं तो पाते हैं कि अभी जिन गांवों को शहर बना दिया गया है वहां की गैर कृषि आबादी 30-40 फीसदी भी नहीं है, ऐसे में लोगों का विरोध स्वाभाविक है।

राज्य में सहभागी शोध से जुड़ी संख्या प्रैक्सिस के प्रमुख अनिंदो बनर्जी लोगों की नाराजगी की वजह बताते हुए कहते हैं कि उन्हें मनरेगा और ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन से जुड़ी कई योजनाओं से वंचित होना पड़ेगा। शहरी निकायों के पास अमूमन उतने अधिकार नहीं होते हैं, जिससे वे अपनी गरीब और वंचित आबादी का भला कर सके। शहर बनने से बहुत ही सतही किस्म की सुविधाएं बढ़ेंगी। जिनको लेकर लोगों में बहुत उत्साह नहीं है। मगर जो योजनाएं उन्हें ऊंचा उठने में मददगार हो

बाकी पेज ६ पर

चीन और रूस के बीच सैन्य सहयोग बढ़ने की उम्मीद

चीन और रूस की साझा गश्त का लेना-देना सीधे तौर पर अमेरिका और उसके सहयोगियों द्वारा बनाए जा रहे क्षेत्रीय रणनीतिक ढांचे से है।

22 दिसंबर को पूर्वी चीन सागर और जापान सागर के ऊपर रूस और चीन ने साझा रणनीतिक हवाई गश्त का आयोजन किया। इस गश्त को पृशिया-प्रशांत महासागर क्षेत्र की भूराजनीति में बेहद ठोस वक्तव्य माना जा रहा है। चीनी विश्लेषकों ने संकेत दिए हैं कि इस तरह के कार्यक्रम भविष्य में "नियमित" भी हो सकते हैं।

इस मौके पर मंगलवार को चीन और रूस के रक्षा मंत्रालय ने एक साझा घोषणा भी की। चीन ने परमाणु शस्त्र ले जाने में सक्षम चार H-6K रणनीतिक बमवर्षक विमानों को रूस के विख्यात दो Tu-95 बमवर्षक विमानों के साथ साझा गरत में हिस्सा लेने के लिए भेजा था। यह दोनों देशों के बीच "वार्षिक सैन्य सहयोग योजना" का हिस्सा है।

घोषणा में कहा गया कि "साझा गश्त का उद्देश्य नए युग में रूस-चीन समग्र रणनीतिक सहयोग की साझेदारी को विकसित करना और दोनों देशों की सेनाओं के बीच रणनीतिक सहयोग व साझा ऑपरेशन की क्षमताओं को बढ़ाना है, तािक वैश्विक रणनीतिक स्थिरता की रक्षा की जा सके।"

दिलचस्प है कि एक महीने पहले ही 6 नवंबर को रूस की वायुसेना के दो टुपोलेव Tu-95MS बमवर्षकों ने जापान सागर और उत्तर-पश्चिम प्रशांत महासागर के ऊपर 8 घंटे तक उड़ान भरी। तब रूस के रक्षा मंत्रालय ने बताया था, "अपनी उड़ान के कुछ हिस्से में दोनों बमवर्षकों के साथ सुखोई-35S फाइटर जेट्स ने भी उड़ान भरी।" यह साफ है कि चीन के साथ साझा गश्त का कार्यक्रम रूस की राष्ट्रीय सुरक्षा के नज़रिए से बेहद जरूरी नहीं है। लेकिन इससे दिया गया संदेश बेहद अहम है। चीन और रूस की साझा गश्त का लेना-देना सीधे तौर पर अमेरिका और उसके सहयोगियों द्वारा बनाए जा रहे क्षेतीय रणनीतिक ढांचे से है।

पिछले हफ़्ते ताइवान ने अपने पहले मिसाइल कॉर्वेट का विमोचन किया है। इसे ताइवान का मीडिया "एयरक्रॉफ्ट कैरियर किलर" के तौर पर पेश कर रहा है। बता दें हाल में चीन की नौसेना के एयरक्रॉफ्ट कैरियर शैंडोंग (घरेलू तौर पर निर्मित पहले एयरक्रॉफ्ट कैरियर) ने बोहाई सागर में अपनी तीसरी ट्रॉयल पूरी की है। यह 23 दिनों में होने वाली तीसरी ट्रॉयल है।

इसी महीने USS मैकिन आईलैंड और USS सोमरसेट (LPD 25) की मौजुदगी वाले एक "अमेरिकी एम्फीबियस रेडी ग्रुप" ने दक्षिण चीन सागर में गश्त मारी थी। समूह ने गश्त के दौरान आकस्मिक "लाइव फॉयर" अभ्यास भी किया। जबकि यह योजना का हिस्सा नहीं था। चीन के सरकारी अख़बार ग्लोबल टाइम्स ने गुस्से में ARG को "अमेरिका द्वारा ताकत दिखाने वाले कदम" के तौर पर बताया था, अख़बार ने कहा था कि इस कदम से "क्षेत्रीय स्थिरता" को नुकसान हो सकता है। अख़बार के मुताबिक़, "चीन को दक्षिण चीन सागर और ताइवान जलडमरूमध्य में अमेरिका से टकराने के लिए तैयार रहना चाहिए, इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि व्हाइट हॉउस में किसका शासन है।"

जापान ने भी हाल में हलचल की है। जापान ने अपनी तरह सोचने वाले पश्चिमी देशों को सुदुर पूर्व में सैन्य ट्रकड़ियों को भेजना का आमंत्रण दिया है। अमेरिका, फ्रांस और जापान की नौसेना ने फिलिपींस सागर में दिसंबर के महीने में एक समग्र अभ्यास किया था। अब यह नौसेनाएं एंटी-सबमरीन युद्ध पर ध्यान केंद्रित कर रही हैं, इसका एक साझा सैन्य अभ्यास इस साल मई में करने की योजना है। यह अभ्यास जापान के एक बाहरी द्वीप पर होगा। जापान के रक्षामंत्री नोबुओ किशी ने पिछले हफ़्ते जर्मनी के रक्षामंत्री एनरग्रेट क्रैम्प-केर्रेनबाउर के साथ बातचीत की। इसमें उन्होंने आशा जताई कि 2021 में होने वाले साझा अभ्यास में जर्मनी के जंगी जहाज़ भी के साथ आएंगे। किशी ने कहा कि "अगर जर्मनी के जंगी जहाज दक्षिण चीन सागर को पार करते हैं, तो इससे जहाजों के 'दक्षिण चीन सागर में आवागामन के अधिकार को बनाए रखने की अंतरराष्ट्रीय समुदाय की कोशिशों को सहायता मिलेगी।" बता दें इस सागर पर चीन पर अपना दावा करता रहा है।

इस सबके बीच, अमेरिका की नौसेना ने एक समग्र समुद्री रणनीति को जारी किया है। उद्देश्य के बारे में यह रणनीति कहती है "आज जब हम नियम आधारित व्यवस्था को बनाए रख रहे हैं और अपने प्रतिस्पर्धियों को हथियारबंद आक्रामकता अपनाने से रोक रहे हैं, तब हमें रोजाना की प्रतिस्पर्धा (चीन के साथ) में ज़्यादा दृढ़ रवैया अपनाना है।" अमेरिकी नौसेना के सचिव ने पहले जंगी बेड़े के दोबारा गठन की मांग की है, जिसका कार्यक्षेत्र "भारतीय और प्रशांत महासागर का संपर्क क्षेत्र होगा।" तरीके से "क्वाड" विदेश मंत्रियों की दूसरी बैठक करवाई थी। इसमें अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, भारत और जापान के वरिष्ठ अधिकारियों ने हिस्सा लिया था। अमेरिकी गृह विभाग द्वारा जारी किए गए दस्तावेज़ में कहा गया कि चारों देशों ने "उन व्यवहारिक तरीकों पर विमर्श किया...जिनके ज़रिए हिंदु-प्रशांत क्षेत्र में, बुरी मंशा और दबाव वाली आर्थिक कार्रवाईयों का शिकार देशों को समर्थन किया जा सके।"

"चाइनीज़ स्टडीज़ ऑफ सोशल साइंसेज़" में "इंस्टीट्यूट ऑफ रशियन, ईस्टर्न यूरोपियन एंड सेंट्रल एशियन स्टडीज़" के विख्यात विचारक यांग जिन कहते हैं, "कुलमिलाकर साझा गश्त ने यह इशारा किया है कि "एशिया-प्रशांत क्षेत्र के साथ-साथ यूरेशिया में शांति-स्थिरता के लिए चीन और रूस काफ़ी ज़्यादा अहम हैं। उनका क्षेत्रीय व्यवस्था को चुनौती देने का कोई इरादा नहीं है। वह उन देशों को प्रतिक्रिया देने के लिए मजबूर हैं, जो क्षेत्रीय सुरक्षा को ख़तरा पैदा कर रहे हैं।"

यांग के मुताबिक़, चीन के विश्लेषकों ने रूस और चीन के सैन्य गठबंधन के नफ़े-नुकसान पर चर्चा की है। इस पर आम सहमति यह बनी है कि मौजूदा सुरक्षा माहौल को देखते हुए मौजूदा रणनीतिक साझेदारी का ढांचा दोनों देशों की साझा चुनौतियों से निपटने का काम करता है। साथ ही दोनों पक्षों को अपने-अपने हितों को पूरा करने का लचीलापन भी उपलब्ध करवाता है। इतने के बाद यह भी ध्यान रखना चाहिए कि सैन्य गठबंधन बदतर स्थिति के लिए आखिरी विकल्प है, जब अमेरिका या फिर कोई दूसरा देश युद्ध शुरू करता

है, जिससे चीन और रूस को एकसाथ लड़ने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

चीन की कम्यूनिस्ट पार्टी के अख़बार ग्लोबल टाइम्स के संपादकीय लेख में लिखा था, "चीन और रूस का सैन्य गठबंधन बनाने का कोई इरादा नहीं है, क्योंकि दोंनों देश जिन समग्र चुनौतियों का सामना करेंगे, उनका समाधान यह सैन्य गठबंधन नहीं कर सकता है।" लेकिन अमेरिका और उसके मित्र देशों के दबाव की वज़ह से दोनों देशों के समग्र रणनीतिक सहयोग को मजबूत किए जाने के लिए बाहरी बल मिला है। इस रणनीतिक सहयोग में सैन्य सहयोग भी शामिल है।

जब तक दोनों देश रणनीतिक तौर पर सहयोग करते हैं और चुनौतियों का साझा सामना करते हैं, तब तक वे एक प्रभावी भयादोहन पैदा करते रहेंगे। दोनों देश खास चुनौतियों से निपटने के लिए एक ताकत बन सकते हैं, जिससे उन्हें दबाने की कोशिशों का प्रतिरोध हो सकता है और अमेरिका के अंतरराष्ट्रीय असभ्य व्यवहार को रोका जा सकता है।

अगर बाइडेन के कार्यकाल में अमेरिका रूस को अपनी सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा ख़तरा मानता है, तो निश्चित ही अमेरिका-रूस-चीन का तिकोण बदल जाएगा। लेकिन इसमें कोई शक नहीं है कि चीन, रूस के साथ रणनीतिक साझेदारी की नज़दीकियों को बढ़ाए रखने और इसे लगातार मजबूत करने का इशारा कर रहा है, तािक अमेरिका के दबाव का सामना किया जा सके, भले ही बाइडेन चीन के साथ अपने तनाव को भविष्य में कम कर लें।

_____ बिहार के गांव कुपोषण और बदहाली के शिकार

पेज ५ से आगे

सकती थीं, उनसे उन्हें हाथ धोना पड़ेगा।

जितने टैक्स शहर में लगते हैं वह उन्हें अब चुकाना होगा। उन्हें पानी का पैसा देना पड़ेगा, जो होल्डिंग टैक्स गांव में लगभग नगण्य था वह अब शहरी तर्ज पर भुगतान करना पड़ेगा। तमाम तरह की सब्सिडी खत्म हो जायेगी। वे कहते हैं, अगर उनका विकास हो गया होता और वे समृद्ध होते तो कोई बात नहीं थी। मगर हमें ध्यान रखना होगा कि यह वही इलाका है जहां आज भी ज्यादातर लोग खेती पर निर्भर हैं। इनमें 91 फीसदी लोग सीमांत किसान हैं, उनका खेती से भी गुजारा नहीं होता। हालात ऐसे हैं कि राज्य में पिछले चार साल में एनीमिया और कुपोषण बढ़ गया है। एनएचएफएस-5 की रिपोर्ट बता रही है। यह कैसा विकास है कि लोगों में खून की कमी होने लगी है और जिन लोगों में खून की इतनी कमी है, उन्हें एक झटके में कह देना कि वे ग्रामीण से शहरी हो गये हैं, कैसा न्याय है?

इस बीच इन फैसले पर सामाजिक कार्यकर्ता इश्तेयाक अहमद अलग ही सवाल उठाते हैं, जो पहले से शहर हैं उनकी हालत तो नारकीय ही है। न साफ पानी, न साफ हवा। भीड़-भाड़ और अफरा-तफरी। पहले सरकार उन्हें तो रहने लायक बनाये, नये शहर बना देने से क्या होगा।

महामारी की आड़ में तेज हुआ प्रशासनिक दमन

▶ पेज ३ से आगे

नस्लभेदी हत्या के विरोध में तमाम छोटे-बड़े शहरों और कस्बों से लाखों लोग सड़कों पर आ गए। इन लोगों का विरोध उस नस्लभेदी व्यवस्था के ख़िलाफ़ भी था, जो इस तरह की हिंसक कार्रवाईयों को जन्म देती है और इन्हें अंजाम देने वालों को सुरक्षा प्रदान करती है। इस आंदोलन का केंद्रीय नारा "ब्लैक लाइब्स मैटर्स" पूरी दुनिया में गूंजा, ऑस्ट्रेलिया, ब्राजील, फ्रांस और ब्रिटेन में भी पुलिसिया हिंसा के पीड़ितों को न्याय देने और नस्लभेद को ख़त्म करने के लिए ढांचागत बदलावों की मांग के साथ प्रदर्शन हुए।

लेकिन यह दमन सिर्फ़ हिंसक पुलिस हमलों तक ही सीमित नहीं था। रिपोर्टों के मुताबिक़, 300 से ज़्यादा प्रदर्शनकारियों पर संघीय अपराधों का आरोप लगाते हुए मामले दर्ज किए गए। नागरिक अधिकार कार्यकर्ताओं ने बताया है कि आरोपों में से ज़्यादातर कानून व्यवस्था लागू करने वाली एजेंसियों द्वारा बढ़ा-चढ़ाकर पेश किए दावे हैं या फिर पूरी तरह यह मनगढंत आरोप हैं। 18 सितंबर को कोलाराडो के डेनवर में "पार्टी फॉर सोशलिज़्म और लिबरेशन" के तीन कार्यकर्ताओं- लिलियन हॉउस, एलिज़ा लुसेरो और जोएल नॉर्थम को शांति भंग करने जैसे असभ्य व्यवहार से लेकर अपहरण, दंगा जैसे गंभीर अपराधों का आरोप लगाते हुए गिरफ़्तार कर लिया गया। यह सामाजिक कार्यकर्ता डेनवर में नस्लभेद विरोधी

आंदोलन में पहली पंक्ति में शामिल थे। यह साल राजनीतिक बंदी जूलियन असांज को रिहा करने के संघर्ष के लिए भी अहम है। जूलियन असांज की प्रत्यर्पण सुनवाई की शुरुआत सितंबर में लंदन के सेंट्रल क्रिमिनल कोर्ट (ओल्ड बैली) में हुई। यह मामला प्रेस की स्वतंत्रता के बुनियादी सवाल से जुड़ा हुआ है, लेकिन इसकी शुरुआत ही सेंसरशिप से हुई, जहां मामले में सुनवाई कर रहीं जज वेनेसा बराइस्टर ने दूरदराज से ट्रॉयल में शामिल होने वाले लोगों में से 40 आवेदकों को बाहर रखा। 4 हफ़्ते की सुनवाई के दौरान तीन दर्जन विशेषज्ञ गवाहों की गवाही हुई, इसमें केस के कई पहलुओं को शामिल किया गया, जिसमें असांज की मानसिक हालत से लेकर अमेरिका में उन पर लगाई गई धाराओं की राजनीतिक प्रवृत्ति और अगर उनका प्रत्यर्पण किया जाता है, तो उनके साथ दुर्व्यवहार और उत्पीड़न की संभावना जैसी बातें शामिल थीं। दुनिया के कई बड़े नेताओं और अहम शख्सियतों के साथ-साथ सामाजिक आंदोलनों ने असांज को समर्थन दिया है और उनके प्रत्यर्पण और सजा के खिलाफ़ आवाज उठाई है। इन लोगों में ब्राजील के पूर्व राष्ट्रपति रह चुके लुइज़ इंसियो लूला दा सिल्वा, डिल्मा रुसेफ, इक्वाडोर के पूर्व राष्ट्रपति राफेल कोरिया, रोजर वाटर्स, जरमी कॉर्बिन, नोऑम चॉमस्की, अर्जेंटीना के राष्ट्रपति अल्बर्टो फर्नांडेज़ और कई दूसरे लोग शामिल हैं।

भारत को विकास के लिए संत्रुलित माहौंल चाहिए

नेपाल की अर्थव्यवस्था

पिछले दो वर्षों में

अपेक्षाकृत रूप से अच्छा

कर रही है और यहाँ तक

कि महामारी के समय में

भी, उसने गति नहीं खोई

है। विदेशी मुद्रा भंडार में

वृद्धि हुई है, निर्यात अच्छा

कर रहे हैं, प्रेषित धन

पर्याप्त है, चालू खाता अब

घाटे में नहीं है। नेपाली

अभिजात वर्ग के लोग इस

बात को भली-भांति जानते

हैं कि चीन की सद्भावना

और निरंतर मदद नेपाल

की स्थिति में महत्वपूर्ण

अंतर ला सकती है।

प्रधानमंती ओली के साथ, सीसीपी प्रतिनिधिमंडल की चली 2 घंटे की लंबी बातचीत में, ओली के हवाले से कहा गया है कि नेपाल और चीन के द्विपक्षीय संबंधों ने हाल के वर्षों में एक नई ऊँचाई को छू लिया है और वे अधिक मज़बूत हुए है।

इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती है कि नेपाल की स्थिरता में चीन का बहुत बड़ी भूमिका रही है। इसका स्पष्टीकरण इस बात से मिलता है कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की सेंट्रल कमेटी के अंतर्राष्ट्रीय विभाग के उपाध्यक्ष गुओ येओझू के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमंडल काठमांडू की याला कर रहा है।

ऐतिहासिक रूप से, यह बात सही है कि बाहरी शक्तियों ने चीन को अस्थिर करने के लिए नेपाल की संरध्न झरझरा सीमा का इस्तेमाल कर तिब्बत में गुप्त गतिविधियाँ करने की कोशिश की है। तिब्बत में पिछले कई दशकों में मौलिक रूप से परिवर्तन आया है और यदि विदेशी हस्तक्षेप जारी रहता है, जैसा कि अमेरिका ने तिब्बती नीति और समर्थन के अधिनियम को संशोधित किया है, उसके इस कदम से स्पष्ट है कि यह वाशिंगटन का चीन को अपने अधीन करने की रणनीति है।

बीजिंग इस तरह के हस्तक्षेप को बर्दाश्त नहीं करेगा और वह ऐसे मिज़ाज वाले देशों की तलाश कर रहा है जिन्होंने अमेरिकी विकासवाद के कड़वे जहर का अनुभव किया है। चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग की सोमवार, यानि 28 दिसंबर, को रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन के साथ टेलीफ़ोन पर बातचीत इसका साक्षी है कि दोनों देशों के एक-दूसरे के मुख्य हितों के मुद्दों पर प्रतिबद्ध हैं। बैठक के बाद सिन्हुआ में प्रकाशित एक टिप्पणी खुद इसकी गवाह है।

सीसीपी प्रतिनिधिमंडल की नेपाल याता की एक बड़ी पृष्ठभूमि है। हालांकि, भारतीय विश्लेषकों के संकीर्ण दृष्टिकोण और शून्यता की मानसिकता के कारण वे इसे समझने की कोशिश नहीं करते हैं। प्रतिनिधिमंडल ने क्षति नियंत्रण करने के लिए काठमांडू की याता की।

इस याता से निम्नलिखित तथ्य सामने आएँ हैं: चीन काठमांडू में राजनीतिक और संवैधानिक संकट का लाभ उठाने के लिए 'फूट डालो और राज करो' के आसान रास्ते को नकारता है। इसके उलट, नेपाल में सीसीपी प्रतिनिधिमंडल ने चीन के प्रति काफी सम्मान हासिल किया है, क्योंकि सीसीपी प्रतिनिधिमंडल ने गैर-कम्युनिस्ट पार्टियों जैसे नेपाली कांग्रेस, मुख्य विपक्षी पार्टी, सहित विभिन्न राजनीतिक और वैचारिक धाराओं से परामर्श किया है।

दरअसल, मंगलवार को हुई बैठक में, प्रतिनिधिमंडल ने अगले साल चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की होने वाली ऐतिहासिक शताब्दी समारोह में भाग लेने के लिए राष्ट्रपति शी की ओर से सम्मानित अतिथि के रूप में नेपाली कांग्रेस के अध्यक्ष शेर बहादुर देउबा को व्यक्तिगत निमंत्रण प्रेषित किया है। यह एक असाधारण भाव प्रदर्शन है।

देउबा के सहयोगियों ने निमंत्रण स्वीकार करने की बात कही है और हवाला देते हुए कहा कि नेपाली कांग्रेस और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के बीच दशकों भरी दोस्ती बीपी कोइराला के समय से है जो कि पार्टी के संस्थापक नेता थे और नेपाल के प्रीमियर भी थे।

भारतीय विश्लेषकों को विचारपूर्वक हो कर इस बात को नोट करना चाहिए कि

नेपाली राजनीतिक वर्ग ने सीसीपी प्रतिनिधिमंडल के सद्भावना मिशन का स्वागत किया है। यह भारत के नीति निर्माताओं के लिए निर्णायक रूप से सच्चाई और आत्मनिरीक्षण का पल है। आदर्श रूप से, यह सीसीपी प्रतिनिधिमंडल मिशन की जगह योगी आदित्यनाथ या नीतीश कुमार का मिशन हो सकता था । भारत ने नेपाल के साथ अपने महत्वपूर्ण संबंधों को किस तरह कमजोर किया है? ऐसा क्या गलत हुआ? गलती किसकी है? भारत फिर से कैसे इन रिश्तों को एक नया मोड़ दे सकता है?

मौलिक रूप से, भारत को अपनी क्षेत्रीय रणनीतियों पर पुनर्विचार करने की ज़रूरत है। भारत को अपने विकास

के लिए एक संतुलित माहौल की ज़रूरत है। अस्थिर और असुरक्षित पड़ोसी देश भारत के हित में नहीं हैं और न ही कोई ऐसी पड़ोसी देश की कामना करता है। इसलिए, भारत के लिए क्षेतीय स्थिरता सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए। भारत एक क्षेतीय शक्ति बनने की इच्छा तो रखता है. अब, यह आकांक्षा भारत की स्वीकार्यता पर निर्भर करती है, जिसका सीधा संबंध उसकी अच्छी-पड़ोसी नीतियों से है। इसकी सफलता स्वयं को एक आकर्षक तैयार उत्पाद के रूप में पेश करने पर निर्भर करती है।

इन सभी तत्वों के बीच मौजूद अंतरसंबंध समझने के लिए, पाकिस्तान की सादृश्यता उपयोगी हो सकती है। पाकिस्तान ने भारत की उन्नति से मनोग्रस्त हो कर कई दशक व्यर्थ कर दिए। वह देश के सुधार के लिए मिले दुर्लभ अवसरों की उपेक्षा और संसाधनों को व्यर्थ करता आया है. उसे प्राथमिकताओं की समझ नहीं है।

यहाँ यह कहना उचित होगा कि पागलपन के कारण आत्मकृत घाव हो सकते हैं। काठमांडू में चीनी मिशन का निष्पक्ष रूप से आकलन की ज़रूरत है। विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता झाओ लिजियान ने बीजिंग में कहा कि काफी "लंबे समय से चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने नेपाल के प्रमुख राजनीतिक दलों के साथ घनिष्ठ और मैत्तीपूर्ण संबंध बनाए हुए है, जिसने आपसी राजनीतिक विश्वास को बढ़ाने, एक-दूसरे से सीखने-सिखाने, प्रशासन को बढ़ावा देने और पारंपरिक मित्रता को मजबूत करने में काफी सकारात्मक भूमिका निभाई है।" इसके विपरीत, भारत ने प्रपीडन का रास्ता अपनाया, अंततः जिससे भारत एकान्तरित हो गया। नेपाली राजनेताओं को एक दिन दरिद्र विदूषक समझ कर लाड़-प्यार बरसाना और दूसरे दिन उनका कॉलर पकड़कर धमकी देने वाली राजनीति को उद्ग्रसित करता है। नेपाल

> के लोगों के मन में एक बात बैठ गई है कि हम एक खतरनाक पड़ोसी हैं जिसके इरादे नेक नहीं हैं, जो न तो भरोसेमंद है और बहुत अधिक आत्म-केंद्रित और दोषदर्षी हैं। दुख की बात यह है कि भारत ने नेपाल के अवारणीय पड़ोसी होने के सभी अद्वितीय लाभों के बावजूद ऐसा किया।

शेहडेनफ्रूड, जैसा कि जर्मन कहते हैं -किसी और के दुर्भाग्य से आँयदीय आनंद प्राप्ति-अच्छी बात नहीं हो सकती है, चाहे वह किसी व्यक्ति की जीवन या राष्ट्र के के बारे में ही क्यों न हो, विशेष रूप से भारत जैसी प्राचीन सभ्यता के लिए जिसका इतिहास उतना ही शर्मनाक अपमान और दुख के क्षणों से भरा है जितना उसका सफलता,

महिमा और विजय का इतिहास है।

अब, इसकी भी कोई निश्चिंतता नहीं है कि चीनी मिशन को एक स्थायी सफलता मिलेगी। यह तो समय बताएगा। लेकिन चीनी प्रवक्ता झाओ ने मिशन के बारे में कहा कि: "देश के मिल और करीबी पड़ोसी के रूप में, हमें उम्मीद है कि नेपाल राष्ट्रीय हितों और बड़ी तस्वीर को ध्यान में रखेगा, ताकि संबंधित पक्ष के बीच आंतरिक मतभेदों को ठीक कर सकें और स्वयं को राजनीतिक स्थिरता और राष्ट्रीय विकास के लिए प्रतिबद्ध कर सके।" यह नेपाल की स्थिरता पर केंद्रित एक सच्चा आंडंबररहित मिशन है।

अंतरपार्टी झगड़े जिसमें व्यक्तिवादी झड़पें, उल्टी महत्वाकांक्षाएं और सत्ता के लिए सरासर वासना होने से मध्यस्थता करना कठिन होता है। जब कम्युनिस्ट पार्टी की बात आती है, तो यह बात और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। चीनी समीक्षकों ने बताया है कि 'विवादों का समाधान जल्द हल होने की संभावना नहीं है', क्योंकि

दो प्रमुख धड़ों के नेता के.पी. शर्मा ओली और पुष्पा कमल दहल डिगने को तैयार नहीं है। सबसे निराशाजनक पूर्वानुमान यह है कि नेपाल सिर्फ दो साल के भीतर फिर से राजनीतिक अस्थिरता की ओर जा सकता है।'

चीनी समीक्षक इस बात को स्वीकार करते हैं कि 2018 में दोनों कम्युनिस्ट पार्टियों के विलय (जिसमें चीन ने बड़ी भूमिका निभाई थी) को अभी तक पूरी तरह से परिष्कृत नहीं किया गया है' और इसलिए विभाजन होने की संभावना है, जो निश्चित रूप से नेपाल की राजनीतिक स्थिरता और भविष्य के लिए हानिकारक होगा और खुद कम्युनिस्ट आंदोलन के लिए भी घातक सिद्ध होगा। इसके साथ ही एक और चुनाव से लिशंकु संसद बनने की ही संभावना है, जिसका मतलब होगा कि नेपाल गठबंधन की राजनीति में वापस जा सकता है और वह दल बदली और पुरानी अस्थिरता के युग में लौट सकता है।

बीजिंग को झूठी उम्मीद नहीं है। लेकिन रविवार को जब काठमांडू में सीसीपी प्रतिनिधिमंडल कठमण्डू पहुँचा, तभी से मिलने वाली ख़बरें काफी कुछ सकारात्मक संकेत दे रही हैं। चीनी प्रतिनिधिमंडल के साथ 2 घंटे की लंबी बैठक में, प्रधानमंत्री ओली को यह कहते हुए उद्धृत किया गया है कि नेपाल और चीन ने हाल के वर्षों में द्विपक्षीय संबंधों को एक नई ऊंचाई मिली है और वे मज़बूत हुए हैं, और चीन एक करीबी पड़ोसी और मित्र के रूप में नेपाल का समर्थन कर रहा है।

सभी राजनीतिक वर्णक्रम में इस बात की अत्यधिक प्रशंसा की जा रही है कि नेपाल को चीनी समर्थन और सहायता की जरूरत है। समान रूप से, नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टियों के भीतर सीसीपी को लेकर काफी सम्मान हैं और दोनों पक्षों ने उत्कृष्ट संबंधों को सहराया जा रहा है। इस प्रकार, 29 दिसंबर को कम्युनिस्ट नेता माधव कुमार नेपाल की टिप्पणी रुचि के लायक हैं जिसमें उन्होंने कहा कि नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी में विभाजन को रोका जा सकता है और प्रतिद्वंद्वी गुट सब कुछ भूलने के लिए तैयार है' यदि ओली अपनी गलतियों को स्वीकार कर लेते हैं। यह बता दें कि दहल एक चंचल और अथिर व्यक्तित्व वाले नेता हैं, उनमें नमनशीलता नहीं है। अगर ध्यान दें तो, इस बात की संभावना है कि चीनी मिशन एक आकर्षण है। नेपाली राजनीतिक अभिजात वर्ग के बीच यह सर्वसम्मति है कि देश एक मध्यावधि चुनाव में जा सकता है।

नेपाल की अर्थव्यवस्था पिछले दो वर्षों में अपेक्षाकृत रूप से अच्छा कर रही है और यहाँ तक कि महामारी के समय में भी, उसने गति नहीं खोई है। विदेशी मुद्रा भंडार में वृद्धि हुई है, निर्यात अच्छा कर रहे हैं, प्रेषित धन पर्याप्त है, चालू खाता अब घाटे में नहीं है।



8 9th January 2021 SWADHINATA R.N. 2536/57

शोध-सृजन सांस्कृतिक चेतना का स्वर बनेगा : <mark>लाल सिंह</mark> शैलेश सिंह : निर्माण की संस्कृति का मुख्य स्वर बनेगा शोध-सृजन

शोध-सृजन पत्निका के दिसंबर २०२० अंक का लोकार्पण २४ दिसंबर २०२० को हुआ। यह लोकार्पण समारोह वर्चुअल हुआ था। हिंदी कथाकार लाल सिंह ने इस अंक का लोकार्पण किया। आलोचक शैलेश सिंह ने इस समारोह की अध्यक्षता की। प्रमुख वक्ता के तौर पर अरुणाचल प्रदेश के राजीव गांधी विश्वविद्यालय के असिस्टेंट प्रोफेसर डॉ. राजीव रंजन प्रसाद ने वक्तव्य पेश किया। पश्चिम बंगाल पत्निका के पूर्व संपादक ताराकांत झा ने इस समारोह में प्रधान अतिथि का स्थान सुशोधित किया। स्वामी अक्षय चैतन्य, शाश्वत रतन जैसे विद्वानों ने अपने वक्तव्य से इस समारोह की गरिमा बढ़ायी। मणीन्द्र चंद्र कॉलेज कोलकाता के हिंदी विभाग की अध्यक्ष डॉ. सुमिता चट्टोराज ने इस समारोह में विशेष वक्तव्य पेश किया। शोध-सृजन पत्रिका की संपादक डॉ. अर्चना पांडेय ने धन्यवाद ज्ञापन दिया। पत्निका की प्रबंध संपादक मधुरिमा भट्टाचार्जी ने इस वर्चुअल समारोह का संचालन किया। आलोचक सुनीता साव और कवि एम एन मिश्रा ने भी इस समारोह को संबोधित किया। इस समारोह में जनवादी लेखक संघ पश्चिम के सचिव राम आह्लाद चौधरी ने इस पि्रका की संघर्ष-गाथा पर आलोकपात किया।

कथाकार लाल सिंह ने पित्रका का लोकार्पण करते हुए कहा कि इस विषम परिस्थितियों के बीच कोलकाता से शोध-सृजन पित्रका का लोकार्पण होना अपने-आप में एक रचनात्मक संघर्ष है। यह पित्रका मासिक है। समय पर इसका छपना तथा इसका लोकार्पण होना एक अभिनव प्रयास है। इस पित्रका में विविधता है। कोई पित्रका अपनी विविधता के साथ चलती है। यही विविधता उसकी प्राण-शक्ति होती है। उन्होंने यह भी कहा कि विश्वसनीयता और कर्मण्यता के आधार पर कोई पित्रका मधुरिमा भद्दाचार्जी

अपनी याला करती है। इस पिलका में छपे विभिन्न लेखों का जिक्र करते हुए उन्होंने बताया कि विद्यापित पर एक अद्भुत आलेख इस पिलका में पढ़ने को मिला। इस आलेख की खूबसुरती यही है कि यह आलेख काफी सहज और सरल है। वर्तमान के कई सवालों को 'विद्यापित हरगौरी गीतिका' के हवाले से प्रस्तुत करने का रचनात्मक प्रयास किया गया है। यह प्रयास हर मामले में सराहनीय है। उन्होंने बताया कि इस पिलका में उर्दू और बांग्ला की रचनाओं को भी स्थान दिया गया है। अंग्रेजी और जनपदीय भाषा की रचनाओं पर भी यह पिलका आलोचनात्मक आलेख प्रस्तुत करेगी। यह उम्मीद की जा सकती है।

आलोचक शैलेश सिंह ने अध्यक्षीय भाषण देते हुए कहा कि कोलकाता से 'उदंत मार्तण्ड' एक साल प्रकाशित हुआ। कालांतर में वह पत्निका वट-वृक्ष बन गयी। उसी कोलकाता से शोध-सृजन पत्निका प्रकाशित होने लगी है, निश्चित तौर पर यह पि्रका वट-वृक्ष बनेगी। इस पत्निका में बांग्ला-उर्दृ-हिंदी की रचनाएं प्रकाशित हो रही हैं। मेरी जानकारी के अनुसार पूरे देश में यह अकेली पत्निका है, जो तीन भाषाओं के रचनाकारों को लेकर चल रही है। इस पत्रिका ने श्रम संस्कृति के महत्त्व को उजागर किया है। श्रम संस्कृति दरअसल निर्माण की संस्कृति है। बहुलतावादी संस्कृति को आगे बढ़ाने के सिलसिले में इस पत्रिका ने अपनी पहल जारी की है, जो अत्यंत प्रशंसनीय है। उन्होंने कहा कि मुझे लगता है कि आने वाले समय में यह पत्रिका मुख्य स्वर बनेगी। जिस तरह से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती पिकका के जरिये मैथिलीशरण गुप्त जैसे महान रचनाकार को स्थान दिया, ठीक उसी तरह इस पत्रिका के जरिये सृजनशील रचनाकार सामने आयेंगे।

पश्चिम बंगाल के पूर्व संपादक ताराकांत झा ने पिलका के विभिन्न पहलुओं का जिक्र करते हुए कहा कि हिंदी और मैथिली के रचनाकारों को ज्यादा से ज्यादा स्थान देने के साथ-साथ समन्वय के सवाल को इस पिलका ने उठाया है। साहित्यिक-सांस्कृतिक जिज्ञासाओं को प्रस्तुत करना एक महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप है। यह पिलका समय को बदलने की इच्छा जाहिर करती है। इतनी रचनाओं को एकित करना सराहनीय प्रयास है।

जनवादी लेखक संघ पश्चिम बंगाल के सचिव राम आह्लाद चौधरी ने कहा कि लेखक अपने समय के उद्गाता होते हैं। कमजोर तबकों के पक्ष में खड़ा होना किसी लेखक की सबसे बड़ी गुणवत्ता होती है। उन्होंने बताया कि रचनकारों को एकजुट करना वर्तमान की मांग है। जाहिर है कि जब लेखक एकजुट होते हैं तब भीषण से भीषण परिस्थितियों का मुकाबला करना संभव हो जाता है। लेखकों की एकजुटता कायम करने से संघर्ष-पथ पर चलना आसान हो जाता है।

इस शोध-सृजन पत्निका के जरिये लेखकों की एकजुटता कायम करना हमारा कृत-संकल्प है। उन्होंने यह भी बताया कि रचनात्मक तकाजा अपने समय का आने वाले काल में विकल्प कहलाता है। लेखक ही विकल्प पैदा करते हैं। सृजनात्मक-रचनात्मक कार्यों के जरिये विकल्प की भावना प्रस्तुत करना सहज होता है। इस दिशा में शोध-सृजन की जय-याता जारी है। इस जय-याता में रचनकारों को शामिल होने का आह्वान करते हुए कहा कि पाठक-लेखक ही किसी पत्रिका का असल केंद्र है। इस केंद्र को मजबूत करते हुए आम जनता के सवालों को हाजिर करना इस पत्रिका का लक्ष्य है। इस लक्ष्य को हासिल करने की दिशा में शोध-सृजन की जय-याता जारी है।



रत्नेश कुमार की दो कविताएं

सड़क पर

सड़क पर गांधी सड़क पर भगत सिंह देख लो भारत देख लो जगत सिंह

सड़क पर शायर घर में न आज सिंह देख लो भारत देख लो जगत सिंह

संसद में नहीं गांधी न भगत सिंह देख लो भारत देख लो जगत सिंह

गडुढ़े में

संसद की साख थी संसद शाख है शासक की कृपा है सड़क भी चुप है शासक की चाप है गड्ढ़े में देश गड्ढ़े में आप हैं



वाम-धर्मनिरपेक्ष विकल्प सरकार गठित करो

▶ पेज १ से आगे

करनी होगी। इस संघर्ष में युवाओं को महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी होगी।

पत्नकार सम्मेलन को संबोधित करते हुए सीताराम येचुरी ने कहा कि पश्चिम बंगाल के विधानसभा चुनाव के पहले और तृणमूल और भाजपा दो राजनीतिक ध्रुवीय केंद्र बनाना चाहती है। जनता की वास्तविक समस्याओं को सामने में रखते हुए आंदोलन करना होगा और इन दोनों राजनीतिक ध्रुवीयकरण को ध्वस्त करना होगा। अनाज, काम, स्वास्थ्य, शिक्षा इत्यादि विषयों के आधार पर जन-आंदोलन को मजबूती देनी होगी तथा तृणमूल और भाजपा के राजनीतिक ध्रुवों को तोड़ना होगा।

सीताराम येचुरी ने पार्टी की केंद्रीय कमेटी के फैसलों का उल्लेख करते हुए कहा कि पश्चिम बंगाल के विधानसभा चुनाव में तृणमूल और भाजपा विरोधी सभी वामपंथियों और वाम सहयोगी दल तथा कांग्रेस को लेकर चुनावी गठजोड़ बनाने की प्रक्रिया तेज की जायेगी। पश्चिम बंगाल में भाजपा और तृणमूल को हराना नितांत जरूरी है।

देश के लिये भयानक संकट भाजपा

▶ पेज १ से आगे

ध्रुवीकरण करना चाहती है, इसके लिये मीडिया का इस्तेमाल किया जा रहा है। भाजपा और तृणमूल की एक ही नीति है। उन दोनों के बीच में किन मुद्दों पर लड़ाई होती है। वे एक दूसरे का विकल्प नहीं हो सकती है। भाजपा और तृणमूल के खिलाफ विकल्प नीति के आधार पर सिर्फ वामपंथी ही संघर्ष कर सकते हैं।

यह सभा कोलकाता के प्रमोद दाशगुप्त भवन में हुई। इस सभा की अध्यक्षता गणशक्ति ट्रस्ट के अध्यक्ष विमान बसु ने की। अखिल भारतीय किसान नेता हन्नान मोल्ला, सीपीआई (एम) के राज्य सचिव सूर्यकांत मिश्र, पार्टी पोलिट ब्यूरो सदस्य मोहम्मद सलीम ने गणशक्ति की भूमिका का उल्लेख किया। जब सभी मीडिया शासक वर्ग की प्रशंसा करते हैं तथा शासक वर्ग का प्रचार करते हैं, ऐसी स्थिति में गणशक्ति ही एक ऐसा अखबार है जो मेहनतकशों के पक्षों में लिखता है। गणशक्ति सिर्फ अखबार नहीं है यह तो संग्राम करने का हथियार है। गणशक्ति संघर्ष की आवाज है। मेहनतकशों का संगठक है।

सूर्यकांत मिश्र ने कहा कि गणशक्ति का इतिहास संग्राम का इतिहास है। विमान बसु ने इस दिन कहा कि शत्नु वामपंथी आंदोलन के बीच विभाजन पैदा करना चाहते हैं। कठिन परिस्थिति में भी गणशक्ति का काम जारी है। गणशक्ति के संपादक देवाशीष चक्रवर्ती ने सभा में आगत लोगों का स्वागत किया।

अखिल भारतीय किसान नेता हन्नान मोल्ला ने कहा कि यह आंदोलन रातों-रात तैयार नहीं हुआ। विगत साथ महिनों से धीरे-धीरे आंदोलन विकसित हुआ है। इस मोदी सरकार ने रातोंरात कृषि और आर्डिनेंस जारी किया। इससे कारपोरेटों के हित की रक्षा हुई। जिस दिन यह कानून पास हुआ, उस दिन से किसान रातोंरात रास्ते पर बैठ गया। किसानों ने देशभर में कृषि आर्डीनेंस की होलीका जलायी है लेकिन सरकार सुनना ही नहीं चाहती है। देश के ६ सौ जिलों में एक करोड़ से अधिक किसानों ने जेल भरो आंदोलन संगठित किया है। इसके बाद भी सरकार नहीं सुन रही है। १४ सितंबर को जब संसद में इस आर्डिनेंस को कानून बनाया जा रहा था, तब भी किसानों ने इसका विरोध किया है। गैर जनतांत्रिक ढंग से सरकार ने कृषि कानून लागू किया है। ५ नवंबर से पंजाब के किसानों ने रोल रोको आंदोलन चालु किया है। इस लड़ाई में ५ सौ से अधिक संगठन शामिल है।

सम्पादक : राम आह्लाद चौधरी भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) पश्चिम बंगाल राज्य कमेटी की ओर से गणशक्ति प्रिंटर्स प्राइवेट लिमिटेड, ३३ अलीमुद्दीन स्ट्रीट, कोलकाता-१६ से राम आह्लाद चौधरी द्वारा मुद्रित और प्रकाशित। सम्पादकीय और व्यवस्थापक विभाग का पता : ३१ अलीमुद्दीन स्ट्रीट, कोलकाता-१६, फोन: 22176633, फैक्स-22640721, e-mail: swadhinatapatrika@gmail.com.